

TEXT LIGHT WITH IN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186527

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H040
B57B

Accession No. P.G. H6367

Author अरु, बाल कृष्ण

Title अष्ट सिद्धिदायक . भाग २ .

The book should be returned on or before the date marked below

दि. २/१०/२१

प्रकीर्णक पुस्तकमाला

भट्ट निबंधमाला

द्वितीय भाग

(स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण जी भट्ट के सुंदर निबंधों का संग्रह)

संपादक

श्री धनंजय भट्ट 'सरल'



नागरीप्रचारिणी सभा,
काशी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, नागरी मुद्रण, वाराणसी

द्वितीय संस्करण, १९००

संवत् २०३०

मूल्य

वक्तव्य

स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट हिंदी के सर्वप्रथम निबंध लेखक हैं। भट्ट जी भारतेंदु हरिश्चंद्र के सहयोगी और उनके घनिष्ट मित्रों में थे। भट्ट जी की भाषा और शैली भी भारतेंदु जी के समान होने के कारण इनका भारतेंदु जी से अधिक परिचय और विशेष संबंध हा करता था। भारतेंदु जी भट्ट जी की बहुत प्रशंसा किया करते थे और कहा करते थे कि "हिंदी में मेरे बाद भट्ट जी की ही लेखनी चमकेगी।" उनकी भविष्यवाणी बिल्कुल ठीक हुई, भारतेंदु जी के बाद हिंदी के सुलेखकों में भट्टजी ही सबके अग्रणी थे।

भाज भाषा, कविता, गद्य, कहानी, निबंध, समालोचना, गद्यकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि सभी विषयों में हिंदी की यथेष्ट उन्नति हुई है। हिंदी साहित्य-वाटिका के इस सर्वतोमुखी उन्नति के बीजों का बपन भारतेंदु जी, भट्ट जी तथा उनके समकालीन अन्य लेखकों ने ही किया था जो भाज अक्षुरित, पल्लवित और पुष्पित होकर इसे मुरभ्य बना रहे हैं। निबंध का आविर्भाव भी हिंदी में इसी समय भट्ट जी के द्वारा हुआ। इसके पहले हिंदी में निबंध का कोई सर्वमान्य रूप स्थिर नहीं हुआ था। हिंदी की धार्मिक पुस्तकों, सूत्रा, भाषाओं और टीकाओं में उपयोगी बातें नीरस ढंग से मानुषात्मिक शैली में लिखी जाती थी। भट्टजी ने अंगरेजी निबंधों के ढंग पर सुंदर साहित्यिक रूप में हिंदी निबंधों का सृजन किया और उसका विस्तार और प्रचार भी किया। पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पं० अबिकादत्त व्यास, पं० गोविंदनारायण मिश्र आदि उस समय के अन्य लेखकों ने भी भट्टजी का अनुसरण किया और अंगरेजी ढंग पर ही अपने अपने निबंध लिखे।

भट्टजी यद्यपि हिंदी के सर्वप्रथम निबंधकार हैं, फिर भी निबंध लिखने में अब तक के सभी लेखकों में वह श्रेष्ठ

माने जाते हैं। उनके निबंध बहुत ही ऊँचे दर्जे के सुंदर, गम्भीर और साहित्यिक होते थे। उनके छोटे से छोटे निबंध में भी बिहारी के दोहों की तरह सरसता और साहित्यिकता भरी रहती थी। भट्टजी हमेशा गंभीर से गंभीर विषय पर लिखते थे और उसे अपने ही ढंग पर सुबोध और सरल कर दिखाते थे पर लेख का चमत्कार जरा भी कम नहीं हो पाता था। भट्टजी की तुलना, एडीसन, स्टील, चार्ल्स लैम्ब जैसे अंगरेजी के सर्वश्रेष्ठ लेखकों के साथ की जाती है।

हिन्दी में भावात्मक, विचारात्मक, उभयात्मक, वर्णनात्मक, आदि सभी प्रकार के निबंधों का प्रणयन भट्टजी ने किया है। पद्यात्मक ढंग से भाव-प्रवण, छोटे छोटे गद्य-काव्य या गद्यगीत लिखने की आगे चल कर जिसका पर्याप्त विकास हुआ भट्टजी ने ही आरंभ थी। इनके सभी ढंग से निबंधों का एक संग्रह 'साहित्यसुमन' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनके कुछ भावात्मक निबंधों का संग्रह 'भट्ट निबंधावली' के प्रथम भाग में किया गया है और उसी के दूसरे भाग में इनके कुछ विचारात्मक निबंधों का संग्रह है। इनके कुछ और भावात्मक निबंधों का संग्रह 'भट्टनिबंधमाला' के प्रथम भाग में हुआ है और इस दूसरे भाग में इनके उभयात्मक निबंधों का संग्रह किया गया है। इसमें भावों और विचारों का समान रूप में सुंदर सामंजस्य पाया जाता है। इस संग्रह में इनके चुने हुए बत्तीस उपदेशात्मक निबंध रखे गए हैं। हर निबंध के नीचे उनकी रचना का समय भी दे दिया गया है।

आशा है हिंदी ससार इस संग्रह का भी समुचित आदर करेगा।

अहियापुर, इलाहाबाद }
३१ अक्टूबर १९४७

धनंजय भट्ट 'सरल'

निबंध-सूची

संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१—	राजा	१
२—	कौलीन्य	४
३—	कौलीन्य और सद्बृत्ति	७
४—	आचरण	१३
५—	आत्मगौरव	१६
६—	चरित्र शोधन	२१
७—	आनसान	२५
८—	ईमानदारी	२७
९—	जातपात	३२
१०—	जातीयता के गुण	३६
११—	जातियों का अनूठापन	४१
१२—	हिन्दू जाति का स्वाभाविक गुण	४८
१३—	मानवी सम्पत्ति	५७
१४—	सारल्य सत्तमो मार्गः	६०
१५—	दिल और दिमाग	६५
१६—	बड़प्पन और अच्छापन	७०
१७—	मन की दृढ़ता	७६
१८—	धर्म का महत्व	८३
१९—	वेद क्या है ?	९०
२०—	तीर्थों की तीर्थता	९६
२१—	हमारे धर्म संबंधी खर्च	९९
२२—	कौम	१०५

२३—कालातिक्रमण	—	१०८
२४—हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा	—	११२
२५—चाटुकार वा मिथ्या प्रशंसा	—	११५
२६—दान की जुदी-जुदी प्रणाली	—	१२१
२७—मास भक्षण	—	१२५
२८—हाड की उत्तमता	—	१३०
२९—भिक्षावृत्ति	—	१३२
३०—गया यात्रा	—	१३५
३१—लोकोत्तर और सर्वसाधारण	—	१४७
३२—सबसे भले हैं मूठ जिन्हें न व्यापं जगत गति	—	१५१

१—राजा

राजा यह शब्द राज् धातु से बना है। जिसके अर्थ हैं राजा अपनी प्रभुता की शक्ति से सबों को दबाता हुआ सब पर प्रकाशमान है। राजा की प्रभुत्वशक्ति के सम्बन्ध में मनु ने लिखा है कि इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम आदि आठों लोकपालों का अंश राजा अपने में धारण कर घरातल का शासन करता है। सच है राजा में समस्त राजकीय प्रभुता के गुण ऐसे ही उद्गुण्ड हैं जिनका खयाल भी मन में आने से कपकपी पैदा होती है। सोचते हैं तो वे सब गुण अब कहाँ मिलें ताकि राजा शब्द की सार्थकता हो सके। जो कहो अब राजा हुई नहीं राजा तो सतयुग में होते थे तभी मनु ने भी राजा के गुण कर्म के कोड़ियों श्लोक गढ़ डाले। सो नहीं बल्कि इस समय तो राजा बड़े सस्ते हो गये हैं बहुत ही थोड़े खर्च में आदमी राजा हो जाता है। किमी बड़े हाकिम की शिफारिस के दो चार जुमले नेकनामी और खैरखाही के काफी देखे जाते हैं पर वे सब गुण कर्म किस कन्दरा में जा छिप रहे। मनु सरीखे महर्षियों का लिखना क्या झूठ ही है इन सब बातों को खयाल कर दिल में बड़ी खलबली पैदा हो गई। सोचते-सोचते खयाल दौड़ा—नहीं-नहीं बड़े लोग जो लिख गये हैं वह व्यर्थ नहीं है। अब इस समय के राजा हमारे कलक्टर लोग हैं इन में ठीक-ठीक वे सब गुण मिल जाते हैं जिन्हें मनु महाराज लिख गये हैं। राजा की प्रसन्नता में लक्ष्मी बास करती है। सच है कलक्टर साहब किसी तरह प्रसन्न हो जाय तो अन्न धन की कमी रह सकती है, ऊँचे दरजे की नौकरी ऊँचा अधिकार मिलना कौन बड़ी बात है, नायब तहसीलदारी मिलना तो कुछ हुई नहीं; डिपटी कलक्टरी तक हासिल हो जाती है। कैसा ही नाखांदा जालिम मिजाज हो आनरेरी मेजिस्ट्रेट और म्युनिसिपल कमिशनर फौरन कर दिया जाता है:—

‘यस्य प्रसादे कमला विजयश्च पराक्रमे’

कमला कलक्टर साहब की प्रसन्नता में किस तरह वास करती हैं सो दिखाया अब दूसरी बात भी कि पराक्रम में विजय है बहुत ही स्पष्ट है। राजा तोप-तुपक अस्त्र-शस्त्र से सज्जित हो बड़ी भारी सेना ले जाता था तब विजय लाभ करता था यहाँ कलक्टर साहब के नाम लेने से विजय होती है। मालगुजारी बसूल करने में पहले दाँतों पसीने आते थे एक-एक ज़मींदार ऐसे सरकश और सरहंग थे कि बिना लोहा बजाये और फौजकशी के किसी तरह मालगुजारी नहीं देते थे। अब एक साधारण सा चार रुपये महीने का प्यादा लाखों रुपया आठ दिन के बीच बसूल कर लाता है और विजय अब किसे कहेंगे। हमारे देश के मज़हबी भगड़ों में कलक्टर लोग बहुधा मुसलमानों के पक्ष में रहते हैं हिन्दू हरचन्द चिल्लाते और सिर धनते हैं उनकी एक नहीं चलती जीत मुसलमानों ही की होती है। तीसरी बात—

‘मृत्युश्च वसति क्रोधे’

भी बहुत साफ है छोटें साधारण लोगों की कौन कहे बड़े राजा और ताल्लुकेदार रईसों का भी कलक्टर साहब की ज़रा नाराज़गी में निस्तार नहीं मृत्यु अब किसे कहेंगे। मृत्यु के दूत पुलिस सो इनके बशम्बद कलक्टर साहब का ज़रासा इशारा काफी है। ये मृत्यु के दूत कहो क्षणभर में प्रलय मचाय दें। राजा में धनद यक्षराज कुबेर का भी एक अंश रहता है ज़िले भर की मालगुजारी कलक्टर के आधीन है खज़ाना कलक्टरी के साथ ही रहता है। परगने परगने के अधिकारी तहसीलदार अधिकृत यक्ष के समान नियत समय पर कौड़ी कौड़ी उगाह कर यक्षराज कलक्टर के पास भेज देते हैं। किसान के घर में चाहे एक दाना न हो ज़मींदार भूखों मरता हो पर सरकारी जमाबन्दी जरूर अदा करे घर बिक जाय ज़मींदारी विलट जाय ज़ेबर् गिरों रक्खे मालगुजारी अदा करे।

दूसरा काम इन यक्षों का यक्षराज के दौरा के समय अपने राजा की सेवा-टहल और आतिथ्य-सत्कार है। अलावे रसद के अपने-अपने परगने की जो कुछ तोहफा हो अवश्य भेंट दे और

भूपण या कुल-दीपक कहे जाते हैं। किसी कुपुत्र ने उस मर्यादा को अपने धिनीने बर्ताव से हटा दिया तो वह कुल पांसन कुलांगार और कुल का कुठार कहा जाता है। पर कुलीनता की ऐंटन कुछ न कुछ उसमें भी अवश्य रहती ही है। यह ऐंटन एक प्रकार से समाज के लिए तो हानिकारक है पर उस पुरुष विशेष को लाभदायक जरूर है। इस लिए कि उस ऐंटन के सबव कुचरित्र से कुचरित्र भी अपने निन्दित धिनीने काम से कभी को पछताता हुआ धिनीने काम से बचता है और अपने कुल का खयाल कर पूर्वजों के सदृश होने की चेष्टा करता है। कुलीन में संसार के उपकार की जितनी सम्भावना रहती है उतनी ही नीच कुल वाले से हानि की। विलायत में जब तक कि 'कंपटीटिव सिविल सर्विस' की प्रथा नहीं निकली थी तब तक जो हाकिम यहाँ आते थे कुलीन घराने के होते थे अब इस प्रथा के निकलने में जो हमारे शासक नियत होकर आते हैं सो जिस क्रम के होते हैं प्रगट है। कोई महीना खाली नहीं बीतता कि पत्रों में ऐमों की करतून न छपती हों और सम्पादकों को अपनी लेखनी को दौड़ाने के लिए मैदान न मिल जाता हो तस्मात् कौलीन्य सर्वथा भला है यदि उसके काम का पालन हो सके।

माचं १९०६

२--कौलीन्य

कुलीनता क्या है सो हम पीछे दिखावेंगे संप्रति यह दिखलाते हैं कि मनुष्य कुलीनो की श्रेणी से क्यों कर गिर जाता है। मनु ने कहा है :—

“कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च ।

कुलान्यकुलता यान्ति ब्राह्मणाक्रमेण च ॥”

नीचकुल में विवाह से, सस्कारों के न होने से, वेद आदि विद्या न पढ़ने से, ब्राह्मणों का निरस्कार करने से, ऊँचा कुल भी नीचा हो जाता है। यह तो हई है पर अभी तक “धनेन कुलम्” यही माना जाता है। रुपया होने से नीचा में नीचा कुल भी कुलीन मान लिया जाता है। परन्तु अब थोड़े से घने पढ़े लिखे “चरित्रेण कुलम्” मानने लगे हैं। उचित मालूम होता है कि कुलीनता की परख में चरित्र की कसौटी से बढकर धन तथा विद्या नहीं हो सकती। बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि धन के मद में मदोन्मत्तो का कुल रुपया निकल जाने से फिर न जानिये कहाँ बिलाय गया उनके कुलीनता की टिर्न बिन्कुल छार में मिल गई उम बनावटी कुल का छोर हो गया पर चरित्रवान् कुलीन का चरित्र के साथ कल का कुछ ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है कि चरित्रवान् कुलीन न हो ऐसा बहुत कम देखा गया है। कसौटी के समय सच्चा कुलीन वही निकलैगा जो चरित्र सम्पन्न है और चरित्रवान् के माथे पर कोई टिकट नहीं लगा रहता जो प्रगट करे कि यह चरित्र सम्पन्न है। चरित्र आदमी का उसके बर्तव्य में नमूद होता है। बहुधा नीच कुल वालों में ऐसे-ऐसे चरित्रवान् पाये गये हैं कि बड़े-बड़े उच्च कुल वाले कसौटी के समय उसके मुकाबले शरमा गये हैं और वह चरित्र पालन के अपने दृढ़ सिद्धान्त से नहीं डिगा। परिणाम में वह नीच कुल वाला कुलीनो की श्रेणी में शामिल कर लिया गया। तो सिद्ध हुआ यह कुलीनता केवल चरित्र पर निर्भर है। कहावत है

चोरी में पकड़ गया और मजायाफता हो जेल काट आया तो उसके आँख का पानी ढरक जाता है फिर दोबारा जेल में जाते कभी नहीं सकुचाता ।

यथाहि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्रतत्रोपविश्यते ।

एव च नितवृत्तसु वृत्तशेषं न रक्षति ॥

इसलिये विचारदृष्टि में देखा तो यह आभिजात्य या शिराफ्त बहुत ही नाजुक चीज है । थोड़ी थोड़ी बातों में इसके वनने विगडने का डर समाया रहता है । बल्कि यहाँ तक बारीक और सूक्ष्म है कि इसका निभना सर्वथा अपने बश की बात न देख कुल जन प्रभव की रक्षा को एक अद्भुत शक्ति मान चण्डी पाठ वाला भगवती का एक रूप इसे मान प्रार्थना और स्तुति करता है —

या श्रीः स्वयं मुकुतिना भवनेष्वलक्ष्मीं पापात्मना कृतधिया हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सताकुलजनप्रभवस्य लज्जा ता त्वा नतोस्मि परिपालय देवि विश्वम् ॥

भगवती जो तुम मुकुती मनुष्यों की स्वयं श्री हो अर्थात् 'मृकृत' मत्कर्म करने वाले मनुष्य को उसके सत्कर्म का फल जो श्री अनेक अभ्यदुय वह आपही हो । एवम् पापियों को जो पाप का फल दग्निता आदि अनेक क्लेश भुगवना पडता है वह भी तुम्ही हो । सज्जनों में जो श्रद्धा है वह तुम्हारा ही रूप है । अन्न में फिर यह वह ही अच्छा कहता है कि कुल जन प्रभव अर्थात् जो कुलीन घराने में पैदा हो नेक-चलनी आदि सद्बृत्त का बोझ अपने ऊपर लिये द्युये हैं वह तुम्ही हो । तुम्ही चाहो तो ससार में उसकी लाज निभती जाय मुँह उजागर रहे नहीं तो उसका निभना दुष्कर है । कितनों ने निश्चय कर रखा है 'धनेनकुलम्' जिसके पास धन है वह नीच कुल में भी जन्म ले कुलीन है किन्तु यह सिद्धान्त अदूरदर्शियों का मालूम होता है । कौलीन्य ऐसी वस्तु नहीं है जो धन से बढ़ जाती हो और निर्धनी की कुलीनता घट जाती हो वरन् कुलीनता आदमी के काम पर अनबता

भूषण या कुल-दीपक कहे जाते हैं। किसी कुपुत्र ने उस मर्यादा को अपने धिनीने बर्ताव से हटा दिया तो वह कुल पासन कुलागार और कुल का कुठार कहा जाता है। पर कुलीनता की ऐठन कुछ न कुछ उसमें भी अवश्य रहती ही है। यह ऐठन एक प्रकार से समाज के लिए तो हानिकारक है पर उस पुरुष विशेष को लाभदायक जरूर है। इस लिए कि उस ऐठन के सबब कुचरित्र से कुचरित्र भी अपने निन्दित धिनीने काम में कभी को पछताता हुआ धिनीने काम में बचता है और अपने कुल का खयाल कर पूर्वजों के सदृश होने की चेष्टा करता है। कुलीन में संसार के उपकार की जितनी सम्भावना रहती है उतनी ही नीच कुल वाले से हानि की। विलायत में जब तक कि 'कपटीटिव मिगिल सरविम' की प्रथा नहीं निकली थी तब तक जो हाकिम यहाँ आते थे कुलीन घराने के होते थे अब इस प्रथा के निकलने में जो हमारे शासक नियत होकर आते हैं सो जिस क्रम के होते हैं प्रगट है। कोई महोना खाली नहीं बीतता कि पत्रों में ऐसों की कर्तून न छपती हो और सम्पादकों को अपनी लेखनी को दौड़ाने के लिए मँदान न मिल जाता हो तस्मात् कौलीन्य सर्वथा भला है यदि उसके काम का पालन हो सके।

मार्च १९०६

३—कौलीन्य और सद्वृत्त

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।

अन्त्येष्वपिहि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥

ऊपर का श्लोक कुलीनता का लक्षण सद्वृत्त को कहता है । अन्त्यज जाति में भी पैदा हुआ हो और नेक चलन है तो वही कुलीन है । हम को भी कुछ ऐसा ही समझ पड़ता है कि आभिजात्य या कुलीनता केवल नेकचलनी है जिसमें चलन नहीं है उसे कुलीन कहते हमारी जिह्वा सकुचाती है । बल्कि यह कहना अनुचित न होगा कि कुलीनता की कसौटी शील या वृत्त है । अनेक ऊँचो नीचो संकीर्ण दशा में पड़ कसे जाने पर जो ठीक उतरा वही कुलीन या खानदानी है । इसी से बहुदर्शी विद्वानों ने निश्चय किया है :—

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमायाति याति च ।

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥

जो धन से हीन है वह दरिद्र नहीं है किन्तु वृत्त नहीं है वही दरिद्र है । इसी से वृत्त की रक्षा अवश्य करे धन की कौन आता है चला भी जाता है । रुपया पैसा हाथ पाँव की मैल है पर चलन से जो दगीला हो गया उसका शिष्ट भले लोगों में यथोचित आदर पाना बहुत कठिन है । इसी से प्रमाणिक पुरुष संसार के अनेक क्षुद्र सुखों को लात मारते हैं । निर्धनता के कारण बहुत तरह का क्लेश भेल जाते हैं किन्तु अनुचित काम जो उनके पद या प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है उसे नहीं किया चाहते । सिद्धान्त है 'न शयानः पतत्यधः' गिरा क्या गिरेगा गिरने का डर उसी को रहता है जो ऊपर को चढ़ा है । जो मैला कपड़ा पहिने है उस को जहाँ तहाँ मैली जगह में बैठते जरा संकोच नहीं होता बैसे ही जो चलन में एक बार दगीला हो गया वह आगे को बेशरम हो फिर शीलपालन की फिकिर कुछ कभी उसे नहीं होती । जैसे जो एक बार

चोरी में पकड़ गया और मजायापता हो जेल काट आया तो उसके आँख का पानी ढरक जाता है फिर दोबारा जेल में जाते कभी नहीं सकुचाता ।

यथाहि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्रतत्रोपविश्यते ।

एव चलितवृत्तसु वृत्तशेषं न रक्षति ॥

इसलिये विचारदृष्टि में देखा तो यह आभिजात्य या शिराफ्त बहुत ही नाजुक चीज है । थोड़ी थोड़ी बातों में इसके बनने बिगड़ने का डर समाया रहता है । बल्कि यहाँ तक बारीक और सूक्ष्म है कि इसका निभना सर्वथा अपने बर्ण की बात न देख कुल जन प्रभव की रक्षा को एक अद्भुत शक्ति मान चण्डी पाठ वाला भगवती का एक रूप इसे मान प्रार्थना और स्तुति करता है —

या श्रीः स्वयं मुकुतिना भवनेष्वलक्ष्मीं पापात्मना कृतधिया हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सता कुलजनप्रभवस्य लज्जा ता त्वा नतोस्मि परिपालय देवि विश्वम् ॥

भगवती जो तुम मुकुती मनुष्यों की स्वयं श्री हो अर्थात् 'मृकृत' सत्कर्म करने वाले मनुष्य को उसके सत्कर्म का फल जो श्री अनेक अभ्यदुय वह आपही हो । एवम् पापियों को जो पाप का फल दग्धता आदि अनेक क्लेश भुगवता पड़ता है वह भी तुम्ही हो । मज्जनों में जो श्रद्धा है वह तुम्हारा ही रूप है । अन्न में फिर यह वृत्त ही अच्छा कहता है कि कुल जन प्रभव अर्थात् जो कुलीन घराने में पैदा हो नेक-चलनी आदि सद्गुण का बोझ अपने ऊपर लिये दृष्टे हैं वह तुम्ही हो । तुम्ही चाहो तो ससार में उसकी लाज निभती जाय मुँह उजागर रहे नहीं तो उसका निभना दुष्कर है । कितनों ने निश्चय कर रखा है 'धनेन कुलम्' जिसके पास धन है वह नीच कुल में भी जन्म ले कुलीन है किन्तु यह सिद्धान्त अदूरदर्शियों का मालूम होता है । कौलीन्य ऐसी वस्तु नहीं है जो धन से बढ़ जाती हो और निर्धनी की कुलीनता घट जाती हो वरन् कुलीनता आदमी के काम पर अनबता

आ टिकी है। किसी निषिद्ध आचरण के पहले कुलीन अवश्य रुकेगा। जिसे दूसरा जियमे कौलीन्य की गन्ध भी नहीं है वेधडक कर गुजरेगा। इससे सिद्ध हुआ कि शील या वृत्त ही कुलीनता का प्रधान अंग है।

हमारे में कौमोयन न आने के लिये ऊँचे कुल का जन्म भी बड़ा विघ्न है। किसी दुराचरण के समय कुलीनता का खयाल रहे तो मनुष्य बहुत से पाप अधर्म और हेतु कर्मात्त अपने को बचा सकता है। किन्तु हमारी बिगड़ी समाज में कुछ ऐसी चाल चल पड़ी है कि कुलीन को किसी निषिद्ध काम के करने में कुलीनता बहुत अच्छा हाड मिल जाता है। हाड की उत्तमता का धमण्ड कभी कभी हमें मिलने में विनोता काम कर डालने का भयंकर साहस दिखाता है। दर्शानि ऋषि के हाड का बज्र बनाय इन्द्र ने समस्त दैत्य समूह का दहन किया था इन कुलीन के हाड का जो कोई अजगर या शस्त्र बनाया जाय तो हम समझते हैं बड़े काम का हा। समभाव प्राप्त का एका और महानुभाव का मूलोच्छेदी कुठार यह कुलाभिमान ही हुआ। जितन तरह के अभिमान हैं उनमें कुल का अभिमान हमें बड़ा छला मालूम होता है। अस्तु, गुण की गरिमा हो या अधिक धन पाग हो तो उसे कुल का अभिमान भी माहता है। किन्तु मुकल्लिष कल्लाच फाके मस्त जब अपने हाड के उत्तमता की शोखी में एंटे जाते हैं तो देखने ला बनता है। तिम “आर्याटाकम” या “आर्याटागमा” कौलीन्य कर्णे में हमारी उत्पत्ति में बड़ा बाधा डाल रहा है और हमें स्वच्छन्द नहीं होने देता। एक-एक कदम पर ऐसी भारी भारी कैद इसके साथ लग रही है जिसमें समाज जर्जरित और छिन्न-भिन्न हो रही है। कुलीनता महा नदी की कूलझकपा स्त्रिया के होने कुल का अभिमान निवाना आछापन है। क्षेमेन्द्र ने बहुत अच्छा कहा है—

कुलाभिमानः कस्तेषा जघन्यस्यान जन्मनाम् ।
कुलकूलझकपा येषा जनन्यो निम्नगा स्त्रिय ॥

सच है कुल की रक्षा सर्वथा स्त्रियों के आधीन है। इसलिए स्त्रियों का चरित्रवती होना कुलीनता की पहिली सीढ़ी है। एक हमारे मित्र का यह सिद्धान्त हमें बहुत पसन्द आया कि जिस घराने में लड़की दे उसकी बहुत कुछ जाँच करने की जरूरत नहीं है जितनी उसकी जिस घर की लड़की हमारे यहाँ आवे क्योंकि हमारे भविष्य सन्तान का भला या बुरा होना इसी पर निर्भर है :

“कुविवाहैः क्रिपालोपैर्वेदानध्ययनेन च”

इत्यादि कई बात कुल की परख में कुविवाह को मनु ने सब के पहले ठहराया है जिसका यही मतलब हो सकता है कि शुद्ध रजवीर्य की औलाद विपत्ति की कसौटी में कसने पर कभी नहीं डगमगायगी। बाल्यविवाह से यह भा घड़ा हाँसि है कि “आर्थोडाग्मा” के नियमानुसार केवल हाड मात्र देख लटका या लड़की के लिए लोग भरे मुँह गिरते हैं जैसे मुरगी खकार पर टूटै। जिसका परिणाम देखने में आता है कि दाम्पत्य-सुख हम लोगों में दुर्लभ सा हो रहा है। जब दाम्पत्य-सुख न रहा तब जो औलाद होगी सो भी वही जैसा कहावत है :—

“मा पिलगनो बाप पिलङ्ग तिनके लड़के रङ्ग बरङ्ग”

हम गर्द खोर हो गए रोज-रोज गिरते ही जाते हैं। विदेशियों के मुकाबिले श्रद्धाजलि हो अपनी गुलामी स्वीकार करने को बड़ी प्रतिष्ठा समझते हैं किन्तु अपने देश-बान्धव और बराबर के भाई के साथ जब कोई सरोकार आ पड़गा तब हाड की उत्तमता में ऐसा ऐंठेंगे कि उस बेचारे की छाया तक बरकावेगे। भूल से उसकी छाया पड़ जाय तो प्रायश्चित्त करने पर भी उनके हाड की वह चमक फिर नहीं आने वाली। कुलीनता का सच्चा घमंड रखने वाले विदेशियों के मुकाबिले प्राण पण के साथ अपने हेठी न सहेगे और अपने छोटे से छोटे किसी देशी भाई को निज अंग मान उसके सेवक बनने में अपना सौभाग्य समझेंगे। विनय अथवा शालीनता या अनौद्धत्य से मनुष्य आप से आप उचाई पर चढ़ जाता है। गुरु नान्हिक देव का कथन है :—

नान्हिक नाना ह्वे रहै जैसी नन्ही दूब ।

और घास जल जायगी दूब खूब की खूब ।

कनौजियों में बाला के शुक्ल का किस्सा कौन नहीं जानता केवल दीनता से ही बाला के शुक्लो का घराना षट् कुल में दाखिल कर लिया गया (Self respect) आत्मगौरव - रक्षा - निमित्त सत्कुलाभिमान अवश्यमेव प्रशसनीय है इसलिए कि इस तरह का अभिमान हमें नीचा काम करने से रोकता है जो अब इस समय किसी विरले सत्पुरुष में पाया जाता है । ऐसे लोग वास्तव में कुलीन की पदवी के अधिकारी हैं और कुलीनो में परिगणनीय हैं । ऐसे को कुलाभिमान भी सोहता है कुल की लाज या कुल की मर्यादा भी ऐसे ही सत्पुत्र के निब्राहे निभती है । जिस जाति या देश में अधिकांश ऐसे लोग होते हैं वहाँ कौमीयत आप से आप आ जाती है । कौमीयत की गरम जोशी जिनमें या जहाँ पर है वहाँ अकुलीन भी बड़े ऊँचे कुल वाले हैं । वहाँ यह कभी न कहा जायगा कि कुलीनता कौमीयत का कलङ्क है । और यह तभी सम्भव है जब हाड़ से कुलीनता निकल जायगी । “धनेनकुलम्” धन से कुलीनता पर जैसा आज दिन जोर दिया जाता है ऐसा शायद पहले न था जिन विदेशियों के संपर्क से हमारे में यह वान आ समाई कि धन होने से आदमी कुलीन हो जाता है वहाँ ऐसा नहीं है । वहाँ काम से कुलीन होने वाले जितने अधिक हैं उतने धन से कुलीन बनने वाले नहीं ! दूसरे यूरोप वाले कुछ ऐसे चलते-पुर्जे व्यवसाय और उद्यमशील हैं कि वहाँ काम से कुलीन बनने वालों के पास धन की कमी रही नहीं जाती । कुलीनता बुद्धि और सौन्दर्य ये तीन वस्तु अपने साथ लिये लिये लक्ष्मी जी डोलती फिरती हैं । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यूरोप ही के देशों में पाया जाता है । भारत में इसके विपरीत है पहले तो भारत की भूमि और यहाँ की जलवायु से लक्ष्मी देवी को ईर्ष्या और घिन है कदाचित् किसी महा मोहनतंत्रोक्त किसी आकर्षण मंत्र के जपने से अपनी जेठी बहन दरिद्रता पर छोड़ दिखाने को लक्ष्मी

आई भी तो यूरोप के विपरीत यहाँ कुमति कुढंग झूठा कुलाभिमान और अन्त को नाश अपने साथ लिये आती है। पाठक ? मैंने कुलीनता के गुण दोष सब कह सुनाये अब आप तय कर लें कैसी कुलीनता कौमीयत का कलंक है।

अगस्त १९०५

४ —आचरण

यह शब्द आ पूर्वक चर धातु से बना है। जिसके मानी हैं चलना और आधार आधेय सम्बन्ध से चलने का सम्बन्ध मार्ग के साथ है। जब मार्ग या रास्ता नहीं है तो चलना कैसा ? इस लिये यह उचित हुआ कि पहले रास्ता मालूम हो तो उसपर चलना भी हो सकेगा। कोई प्राचीन बुद्धिमान रास्ते के सम्बन्ध में निश्चय कर गये है :—

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयोपि भिन्ना नैको मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।

धर्मस्य तत्त्व निहितं गुहाया महाजनो येन गतः स पन्था ॥

श्रुति अर्थात् वेद के सिद्धान्त भिन्न-भिन्न है तब श्रुतिमूलक स्मृतियाँ भी अलग-अलग हुआ ही चाहें। ऐसे एक भी मुनि नहीं है जिनका मत सर्वसम्मत और एक दूसरे से अलग न हो धर्म का तत्त्व न जाने किस महान्धकारपूरित गुफा में छिपा हुआ है जिसे सब लोग टटोल-टटोल अपने मन माफिक कल्पना कर लेते हैं। इससे जिस रास्ते पर बड़े लोग चल गये हैं वही मार्ग है। अस्तु इस श्लोक का गढ़ने वाला मालूम होता है मार्ग की खोज के पीछे सिर पचाता हुआ श्रुतियों को उलट-पुलट कर देखा स्मृतियों को भी भिन्न-भिन्न मुनियों के भिन्न-भिन्न मत का विचार कर जब थक गया तो अन्त को यह निष्कर्ष निकाला कि श्रुति स्मृति तथा ऋषिवाक्य सब निरी बकवाद है। कौन इनके पीछे पड़ अपना समय नष्ट करे क्यों न आँख मूँद उसी रास्ते चले चलें जिस रास्ते पर बड़े लोग चल चुके हैं। अब हम जो ऐसे निहायत कमजोर तबियत के नहीं हैं कि बिना किसी खास “डिफिनिशन” लक्षण के किन्हीं महाजन मान बैठें ? खास कर ऐसे जमाने में जब कि महाजनी का मनीआर्डर घर-घर और आदमी-आदमी पीछे बाटा जाता है समझदारी और तालीम का उफान आया हुआ है। कुण्ठित कपाल वाले इन दिनों के पुराने खबीसों को जिनमें किसी प्रकार महत्व का कहीं लेश भी नहीं पाया जाता उन्हें महाजन

मान लेना या तो अपनी बेइज्जती कराना विचार और समझदारी के स्रोत पर डाँट लगाना है या चित्त में बिना चुभे ऊपरी तबियत से उनके भद्दे खयाल मान लेना दभ का रूप बगुला भक्त बन जाना है। इल्म और हिकमत के उफान में भर यदि कुछ दखल देते हैं तो वे कहते हैं यह तो तुम्हारी स्वोत्प्रेक्षित बुद्धि शास्त्र और धर्म-विरुद्ध और कपोल-कल्पना है। उनका कहा मान उनके आचरण पर चलते हैं तो चार ही वर्ष की उमर में कन्या का विवाह कर दें नहीं तो धर्म में बट्टा लगता है। बाल विधवाओं को आरा में रख चिरवा डाले खाने पीने की छिलावट और जाति पाँति के भगड़ों को तरक्की दे देश में सब ओर फूट का ऐसा बीज बोवे कि जातीयता या कौमीयत की कही गन्ध भी न रह जाय ! तात्पर्य यह कि जिसे हम कुरीति और कुसस्कार मान अपने को उससे मुक्त किया चाहते हैं जिसका नाम सशोधन और मुल्क की तरक्की है वही इनके मत में भ्रष्ट होना धर्म के विरुद्ध चलना और कदाचार है। इसलिये महापातित्य कर्म आपके सदाचार को दूर ही से नमस्कार है।

स्पर्शक्रामक व्याधि (Infectious disease) के समान इसकी वायु हम तक न आवे तभी अच्छा। हमारे लिये वही सदाचरण है। वही शिष्टाचार है वही स्वर्गसाधन का उपाय है। जिसकी नस-नस में पालिटिक्स भरी हो मुल्क का मुल्क आज दिन ऐसे एक मजहब या धर्म का प्यासा है जो दुर्घट राजनीति सूत्रपात से पूर्ण हो और यह खूबी किसी कदर स्वामी दयानन्द ही के मत में पाई जाती है। जैसे मनुष्य बाल वृद्ध तरुण अवस्था में परिणत हुआ करता है वैसे ही मुल्क की दशा का भी परिवर्तन होता रहता है। हमारे देश में ऐसे-ऐसे कई परिवर्तन हो चुके हैं आदि में हमारे यहाँ कोई समय ऐसा भी हो गया है जब समस्त देश इसी एक ओर झुक पड़ा कि इस दृश्य जगत् का तत्त्व क्या है ? दर्शन और फिलासोफी अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँचाये गये। वेदों ने विस्तार पाया तब वही धर्म लोगों को रुचि के अनुकूल था जो शास्त्रों की गूढ़

से गूढ़ फक्किकाओं को हल कर सिद्ध किया गया हो। उपरान्त कविता का जमाना आया पुराण रचे गये रूखे ज्ञान में सलोनी भक्ति भी मिला दी गई सगुण ब्रह्म और साकार की पूजा का प्रचार किया गया जो लोगों की सुकुमार मति को अत्यन्त रुचा। अब उच्च शिक्षा के प्रभाव से लोगो की बुद्धि सुकुमारता छोड़ प्रौढ़ता धारण करने लगी है दास होने के बदले स्वामी बना चाहते है। जिस बात से जरा भी उनकी आजादी और स्वच्छन्दता में दाग हो वह उन्हें अखर रही है। इस दशा में यह क्यों कर संभव है कि ऐसे महाकुण्ठित धर्म में उनकी श्रद्धा और उत्साह बढ़े जिस धर्म का दासोस्मि मूल मंत्र है भाँति-भाँति के बन्धन से जकड़े रहना ही जिसकी शोभा और प्रतिष्ठा है। परलोक के पीछे इस लोक को स्वाहा कर देना ही जिसका फल है।

हमारे लिये तो वही धर्म है वही श्रृंष्ट कर्म है वही परम स्वर्ग-साधन है वही आराधन है जिसके आचरण ये हमारी गिरी दशा से उठने के लिये हमें अणुमात्र भी आश्वासन मिले वह आचरण आपकी पोथियों में आपके शास्त्रों में आपके धर्माभास अधर्म में कही हुई नहीं किन्तु वह केवल गौराङ्ग महापुरुषों की दी हुई उच्च शिक्षा में मध्यान्ह के सूर्य के प्रकाश के समान चमक रहा है। इससे अब भी हठ छोड़ सीधी राह पर आइये धर्म धर्म पुकार कान की चैलियाँ मत भारिये हमें आप पतित कहिये नास्तिक कहिये धर्मच्युत मान लीजिये कहेंगे स्पष्ट।

‘स्पष्टवक्ता न वञ्चकः’—

अप्रैल १८८६

५-आत्म-गौरव

(Self Respect)

नये और पुराने फैशन के भाँत-भाँत के पहनावे चल पड़े हैं जिसे पहन हम ऊँचे से ऊँचे दरजे के लोगों के साथ बेखटके मिलजुल सकते हैं किन्तु मन की वृत्तियों को ऊँचे दरजे पर पहुँचाने को केवल आत्मगौरव एक ऐसा पोशाक है जिसे पहन मनुष्य न केवल छोटे-बड़े सब लोगों में प्रतिष्ठा ही पाने का अधिकारी होता है वरन् नीचा काम नीची बात नीच आचरण से सदा अपने को बचाता रहता है। ऐसे के लिये मानहानि सब से बड़ी हानि है। जीने से हाथ धो बैठना उनके लिये अच्छा है किन्तु अपना गौरव न रख जीना अच्छा नहीं --

‘रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून ।

पानी गये न ऊबरै मोती मानुस चून ।’

जिनको अपनी प्रतिष्ठा और गौरव का खयाल है वे न केवल नीचा काम करने से अपने को अलग रखते हैं बल्कि ‘आत्मोत्कर्ष विधान’ अपनी तरक्की अपने निज बाहुबल से क्यों कर हो सकती है इसे भी वे ही जानते हैं। वास्तव में विचार कर देखिये तो आत्मोत्कर्ष विधान ही का एक दूसरा नाम आत्मगौरव है। बड़े कष्ट की दशा में पड़ कर भी ऐसे लोग धीरज के साथ चुपचाप अपने गिरे दिन की दुर्गति भोग लेते हैं पर मोती सी आब नहीं गँवाया चाहते :—

‘सर्वः कृच्छ्रगतोपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ।

गरीबी और निर्धनता में तो आत्मगौरव बड़ा भारी धन है जिसने अपनी पत नही गँवाया और अपना गौरव बनाये हुये है समाज में वह वंसी ही प्रतिष्ठा और इज्जत पाने का दावा रख सकता है जैसा धनी अपने असंख्य धन के द्वारा पाता है ।

आत्मगौरव एक प्रकार का साधन है जिसे बचाये रखना सहज काम नहीं है। यावत् बुराइयों से अपने को अलग रख सके तब आत्म-गौरव पाने का दावा कर सकता है। अपने आत्मगौरव का निबाह करने वाला मैला काम प्राण निकलने की दशा पर भी करने में सकुचायगा। अपनी बड़ी से बड़ी हानि सह लेगा पर उचित बात से न हटैगा। बेईमानी के अपवाद से बचने को लेन-देन में साफ रहेगा। वित्त के बाहर कोई काम न करेगा ऊपरी बनावट और जाहिरदारी को ज़हर के समान बरकावेगा। पक्षपात का लेश भी अपने में न होने देगा। हमारी बात कदाचित् भूठ न निकले इसलिये बिना सोचे समझे एक शब्द भी मुँह से न निकालेगा। साराश यह कि आत्मगौरव चरित्र-संशोधन की पहिली सीढ़ी है। मनुष्य में चरित्र की पवित्रता की अन्तिम सीमा भी यही है। भलमनसाहत की कसौटी है। स्वर्गद्वार की सोपान परम्परा है। हम सबों के जीवन का उत्तम परिणाम है। सीधे और सरल मार्ग पर बेखटक चलने वाले संसारचक्र की धुरी है। इत्यादि, इत्यादि।

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।

जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे को होय ॥

ऊपर का वाक्य महात्मा कबीरदास के मन के मौज की बानगी है। ध्यान देने की बात है कि दुःख में ऐसी कौन सी बुराई समझी जाती है कि लोग उससे दूर भागते हैं और सुख में कौन-सी ऐसी भलाई है कि सभी उसे चाहते हैं। द्वन्द्वातीतपूर्ण ज्ञानी जिन्हें ब्रह्म या आत्मा का साक्षात्कार है उनके मत में तो सुख दुःख कुछ हई नहीं ये दोनों केवल मान लेने की बात हैं। रहे अज्ञानतिमिर में टटोलने वाले हम लोग सांसारिक जीव जो दिन-रात इसी चेष्टा में रहते हैं कि दुःख से बचै और सुख सन्दोह में मग्न रहै उन्हीं पर इस सुख-दुःख का आविर्भाव तिरोभाव हुआ करता है।

तो निश्चय हुआ कि वास्तव में सुख या दुःख दोनों कुछ नहीं हैं केवल हमारे ही चित्त की दुर्बलतामात्र हैं। सच तो यों है कि

वैसे पापी अपने पाप कर्म का फल दुःख और यातनायें भोग सुख स्वरूप मुक्ति का अधिकारी हो सकता है। तो सिद्ध हुआ कि दुःख एक प्रकार का ऐसा विमल जल है जिसमें स्नान कर मनुष्य सुगमता से शान्ति के मन्दिर में प्रवेश पा सकता है जहाँ जाकर इसे उत्कृष्ट सुख का दर्शन अति सुलभ है।

‘अशान्तस्य कुतः सुखम्’

तो ईश्वर का स्मरण और चित्त में शान्ति पैदा करने का दुःख से बढ़ कर कौन दूसरा द्वार हो सकता है।

‘विपदः सन्तु नः शश्वत् यासु सङ्कीर्त्यन्ते हरिः।’

दूसरे दुःख न होता तो मित्र और बेगानों की परीक्षा की फिर क्या कसौटी (Standard) रह जाती उपकार प्रत्युपकार आदि शब्दों के अर्थ की चरितार्थता ही संसार से लोप हो जाती न धीरज ही को कहीं प्रगट होने का अवकाश मिलता जो महात्मा महापुरुषों के अनेक उत्तम गुणों में पहिला है।

‘विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा’

इत्यादि। दुःख की अब और अधिक तान आलापेंगे तो डर लगती है कि कहीं पढ़ने वाले रुठ न जाँय कि आज किस मनहूस से काम पड़ा इससे बहुत हुआ बस।

सितम्बर १८६१

६--चरित्र शोधन

मनुष्य के जीवन की शोभा या रौनक चरित्र है। आदमी के लिये यह एक ऐसी दौलत है जिसे अपने पास रखने वाला कौसी ही हालत में हो समाज के बीच गौरव और प्रतिष्ठा पाता ही है वरन् सबो के समूह में जैसा आदर नेक चलन वाले का होता है वंसा उनका नहीं जो धन और विभव से सब भाँत रंजेपुञ्जे और खुशहाल है। ऐसे को कोई ऊँचा सन्मान या बड़ी पदवी पाते देख किसी को कभी डाह या ईर्ष्या नहीं होती। धनियों के बीच जैसा उतरा-चढ़ी और परस्पर की स्पर्द्धा रहा करती है उसका शिष्टता के सूत्र में सर्वथा प्रतिबंध है। चरित्र पालन सभ्यता का प्रधान अंग है कौम की सच्ची तरक्की तभी कहलावेगी जब हर एक आदमी उस जाति या कौम के चरित्र-संपन्न और भलमनसाहत की कसौटी में कसे हुए अपने को प्रगट कर सकते हों। भले लोगों के चले हुए मार्ग या ढंग पर चलने ही का नाम कानून, व्यवस्था या मोरालिटी है। कहा भी है:—

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनाः ।

स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥”

इल्म और लियाकत मे हम चाहे उत्कृष्ट विद्वान् न हों अधिक धन भी पास न हो पर चरित्र की कसौटी में यदि कसे हुए हों तो हम चाहे जैसी दशा में हों हमारी मातबरी सबों से अधिक समझी जायगी। इसमें संदेह नहीं कि विद्वान् और सुयोग्य की लोकोत्तर बुद्धि पर मोहित हो लोग चाहे उसे देवता समान पूजते हों पर एग़रार या विश्वास एरु ऐसी बात है जिसमें

इल्म और लियाकत से अधिक कोई बात आवश्यक है और वह यही चाल-चलन की कसौटी है। दिमाग बिना दिल, विद्या और ज्ञान बिना आचरण, चतुराई बिना सुचाल, निस्संदेह मनुष्य में एक प्रकार की शक्ति हैं किन्तु वे सब ऐसी शक्तियाँ हैं जो केवल हानि पहुँचाने वाली अलबत्ता पाई जाती हैं। इस प्रकार की शक्तियाँ दिल-बहलाव के लिए जरूर हो सकती हैं। कभी-कभी उनसे हम कुछ सीख भी सकते हैं पर समाज को उनसे कुछ फाइदा पहुँचा हो कभी किसी ने देखा या सुना न होगा। जैसे किसी गाँठ काटने वाले की अकिल और चालाकी पर हमें तअज्जुब और कभी कभी एक प्रकार का दिल-लगाव भी उससे है पर उसकी यह चालाकी चतुराई और अकिल संसार के उपकार के लिए है कोई इसे न मानेगा।

सच्चाई, खरापन और मन वच कर्म से भलाई की ओर भुकाव, दया, न्याय और उचित का दृढ़ पक्षपात, मैला काम, मैली वासना से निपट धन, उदारभाव लेन देन में सफाई, दियानतदारी इत्यादि कई एक और दूसरे दूसरे मनुष्य में चरित्र संशोधन के मुख्य अंग हैं। कौल का सच्चा होना और काम में खरापन चरित्र संशोधन का बड़ा भारी सहारा है जैसा हमारे मन में हो वैसा ही मुख पर भी और जो मुख पर है वह हम अपने कामों से प्रगट कर दिखावें। मन वचन और काम में आपस का मेल होना ही महत्व या चारित्र्य है:—

“मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद्वात्मनाम्॥”

और यह बात उसी से होगी जिसने बनावट और नुमाइश को कभी पहिचाना ही नहीं और जो सदा इस बात के लिए चौकस है कि जाहिरा भी हमारा उतना और वैसा ही रहे जो कुछ बातिनी हममें है। सच मानिये ऐसों को जन-समाज में निरादर अप्रतिष्ठा तथा हेठापन जो समझदार के लिए प्राणान्तिक कष्ट है सहने का कभी मौका ही न मिलेगा।

चरित्र शोधन मनुष्य मात्र के जीवन का एक मुख्य उद्देश्य होना चाहिए । ऐसी चलन से रहें जिसमें हमारी भी शरीफ और भले मनुष्यों में गिनती हो । इसकी एक थोड़ी सी फिकिर भी हमारे में शराफत पैदा कर देने के लिए काफी है —

“अनुगन्तं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते ।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति ॥”

भले लोगों के चले हुए रास्ते पर जो हम पूरी तरह पर न चल सकें तो जितना हो सके उतना ही अमल में लावे । जो एक सीधे रास्ते पर जा रहा है वह कभी नहीं भटकने का दुःख सहेगा । ऊँची श्रेणी के लोगो मे जो कुछ बर्ताव है हम उसी को अनुकरण करते रहै तो कभी सकट में न पड़ें । अङ्गरेजी के एक विद्वान् का मत है कि वह जो ऊँचे की ओर नहीं ताकता अवश्य नीचे को देखेगा । जो ऊँचे पर चढ़ रहा है चाहे पूरी बलन्दी तक न पहुँचें तो उस स्थान से कुछ ऊँचाई पर अवश्य ही पहुँचेगा जहाँ से वह चला था । जैसे दिन का उजाला एक छोटे से छेद से भी पैठ अंधियार को दूर हटाता है वैसे ही भलाई की एक छोटी सी बात भी आदमी की नेक चलनी का पूरा पता दे सकती है । वृत्तपालन से परलोक का साधन प्रासङ्गिक फल है । यहाँ संसार में रहकर जो एक बात में भी चलित वृत्त हैं वे अपनी बाकी चालचलन को भी नहीं सुधरी हुई रख सकते जो साफ और उजला कपड़ा पहने है वही मैली-कुचैली जगह में बैठने से सकुचायेंगे । मैले कपड़े वाले को मैली जगह में बैठने का क्या संकोच है जो शिष्ट और नेक चलन है उन्हीं को अपनी नेक-चलनी के हिफाजत का ख्याल होता है बदचलन वेहया की क्या ? हमारा नित्य का बर्ताव हमारे लिए एक स्कूल है जिसमें दृढ़ रहकर हम अपने आप बिना किसी को गुरु किये ऊँचे दरजे की शिष्टता और भलमनसाहत सहज ही में सीख सकते है । कचलपटी से बचे रहना लेन देन में सफाई और ईमानदारी बात का धनी

होना अपने असरइतों पर दया और मुलाइमीयत सुस्ती वा निरुद्यमता का अभाव इत्यादि पाँच चार बात ऐसी है जो उजाले की भाँत बहुत ही थोड़े में आभिजात्य का भलमनसाहत की परख करा देती है। इसलिए जिन्होंने इन बातों पर अच्छी तरह अमल कर छोड़ा है वे ही ऊँची श्रेणी में गिने जा सकते हैं पर असिधाराव्रत का निवाहना कोई सहज काम नहीं है। बिरले जन निभानेवाले हैं।

जनवरी १८६२

७—आनशान

संसार में सबसे अधिक धनवान् वे ही हैं जिन्हें अपनी आनशान का खयाल है। ऐसे लोग सर्वस्व खोकर भी अपनी शान नहीं जाने देते। असामान्य, अनोखा, निराला ढङ्ग जो उनकी स्वच्छन्द आजाद तबियत और सिहवृत्ति के लिए उपयुक्त है उसी का नाम शान है, और मनस्वीजन बड़ी सी बड़ी हानि सह लेते हैं वरन् सबसे प्रमूल्य धन अपना जीवन भी गँवा देते हैं पर अपनी शान नहीं जाने देते। आनशान निभाने को मनस्विता के अतिरिक्त उदारता एक दूसरा गुण है जिसके न होने से शान कमी रही नहीं सकती। सकीर्ण और दुर्बल हृदय वाले ओछे छोटी तबियत के लोग जिनको स्वार्थ ही अपने जीवन का उद्देश्य है आनशान, इज्जत और प्रतिष्ठा को तिनके के बराबर भी नहीं मानते। आदमी को अपनी थोड़े दिन की जिन्दगी आनशान के साथ पार करना कोई सहज बात नहीं है।

संसार के अनेक जघन्य क्षुद्र सुखों से मुँह मोड़ जो चञ्चल मन की वृत्तियों को बश में ला सके, स्थिर चित्त कौल का सच्चा हो वही अपनी शान कायम कर सकता है। मृच्छकटिक में चारुदत्त का उदार चरित्र इसका उदाहरण है। नागानन्द में जीमून्वाहन इसका दूसरा उदाहरण है। चण्डकौशिक में हरिश्चन्द्र ने अपनी शान निबाहने को सब दुःख उठाया, राज्य छूट गया, स्त्री छूट गई, पुत्र का वियोग हो गया, चाण्डाल के हाथ त्रिके पर सत्यभ्रष्ट न हुए। नल और दमयन्ती के चरित्र में राजा नल इसके उदाहरण हैं। शान बढ़प्पन और महत्व का एक प्रधान अंग है। शानवाले लोग ही समाज के अग्रग्रा और नायक होने के योग्य हैं। मिस्टर ग्लैडस्टोन केवल आनशान के कारण कैसर्वेंटिव दल के इतना विरोधी होने पर भी फिर निबरल मिनस्टरी के अग्रग्रा किये गये। बड़े बड़े कामों की जिम्मेदारी ऐसे लोगों पर रख

दी जाती है तो उस काम के निर्बिघ्न समाप्त होने की पूरी सम्भावना रहती है। मुगल बादशाहों ने हजार सिर धुना पर उदयपुर के राणाओं ने बेहद तकलीफ उठाने पर भी अन्त तक अपनी आन निबाही और मुसलमानों को अपनी लड़की न दिया। टाड साहब के राजस्थान की पढ़ो तो हमारे क्षत्रियों की शान का हाल समझ रोंघटे खड़े हो जाते हैं। चौहानों के सिरमौर हमीर मिट गये, प्राण से भी हाथ धो बैठे, पर अलाउद्दीन की इनाअत न कबूल की; आज तक कहावत चली जाती है—

‘तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार’

कौल देकर फिर उसे तोड़ना आनशान वाले अपनी शान मिट्टी में मिलना मानते हैं। ऐसो के मुँह से पहले तो कोई बात मुँह के बाहर निकलती ही नहीं और जो निकली तो फिर हाथी के दाँतों के समान हो गई। हाथी के दाँत जो निकले सो निकले फिर भीतर को नहीं मुड़ते—

“विदुषा वदनाद्वाच. सहसा यान्ति नो बहिः।

याताश्चेन्न पराश्वन्ति द्विरदाना रदा इव।’

इसी शान का दूसरा नाम चरित्रपालन भी है। स्माइल साहब कृत ‘स्माइल आफ क्यारक्टर’ पढ़ने से न जाने कितने उदाहरण इसके पाये जाते हैं; उन्हें यदि यहाँ पर लिखा चाहे तो एक स्वच्छन्द छोटी सी पुस्तक बन जाय। इतिहास तथा जीवनचरित्र का पठन-पाठन तो मानो शान वाले सुजन पुरुषों से परिचय करा देने का एक उत्तम द्वार है। क्षुद्र नीची और ओछी तबियत वालों का जिम्मा हम नहीं ले सकते किन्तु जिसके उदार और उन्नतचित्त में अणुमात्र भी आन का अंकुर है उसके लिये तो ये उदाहरण बहुमूल्य रत्न हैं। जिन पर ध्यान रख आदमी चलता रहे तो ऊँची नीची दशा में पड़ हिम्मत न हार दूसरों के लिये चरित्रपालन का खुद एक नमूना हो सकता है।

८—ईमानदारी

(Honesty)

यदि इस बात पर ध्यान करो कि मनुष्य को अपने काम में कृत-कार्य होने के लिए कौन-कौन से उत्तम गुण प्राप्त करने चाहिये । तो (Honesty) व्यवहार में सफाई या ईमानदारी पहिली बात होगी । बिना जिसके रोजगारी अपने कारबार में किसी तरह प्रतिष्ठा या सरसब्जी नहीं हासिल कर सकता ।

“आदमी के गात में करामात एक बात है”

इस कहावत की पूरी चरितार्थता बहुधा ईमानदार रोजगारियों ही में पाई जाती है । जो अपनी बात बनाये है वह बिना कुछ लिखे-पढ़े हजारों लाखों जब चाहे तब केवल बात पर ले सकता है और लोग बिना किसी मीनमेख के खुशी से उसे दे देते हैं । सच पूछो तो यहाँ का बनिज अब तक इसी ईमानदारी के भरोसे चलता रहा । ज्यों-ज्यों (Litigation) सरकारी कानूनों में बारीकी और हिन्दी की चिन्दी निकलती गई विश्वास उठता गया, लेन-देन में जाल और फरेब को फ़रोश होता गया । यहाँ तक कि भाई-भाई और बाप-बेटे में भी ज़माना - जमाखर्च कोई हकीकत नहीं जब तक कानून की चूस्त इबारतों में लिखा पढ़ी हो हस्ताक्षर न कर दिया हो ।

हिन्दुस्तान के व्यौपार घटने के जहाँ बहुत से कारण हैं उनमें कानून की बारीकियाँ भी एक है । कितने तरह के रोजगार और पेशे बदनाम हैं कि वे अच्छे शिष्ट पुरुष के करने योग्य समाज में नहीं समझे जाते पर निश्चय मानो वह काम या पेशा खुद बुरा नहीं है किन्तु जो लोग उसे कर रहे हैं वे ऐसे हैं जिससे वह काम या पेशा

बदनाम हो गया है । कोई काम हो जो ईमानदारी से किया जाय और उचित लाभ के अतिरिक्त एक पैसा बेईमानी का उसमें नहीं आया वह सर्वथा प्रतिष्ठित और सराहना के योग्य है । नीचे से नीचा काम ईमानदारी के साथ किया जाय कभी बुरा नहीं है । किसी ऊँची बात के लिये लक्ष्य कर नीचे से नीचा मेहनत का काम बुरा नहीं है जो अपनी ईमानदारी में बढ़ा न लगता हो । जो लेन-देन में पवित्र और शुचि है धर्मशास्त्र वालों ने उसी को पवित्र माना है । मनु महाराज ने शौचाशौच के प्रकरण में अथ शौच (Honesty) को सब से बढ़ के पवित्र रहने का द्वार बतलाया है ।

“सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।

यर्थशौचं हि स शुचिर्नमृद्वारि शुचिः शुचिः ।”

मिट्टी और जल जो विष्ठा मूत्र आदि अपवित्र वस्तु के स्पर्शस्पर्श के लिए कहे गए हैं कि यह अपवित्र वस्तु छू जाय तो इतनी बार मिट्टी लगाय जल से धोवे सो सब उसे पवित्र नहीं कर सकते जो लेन-देन में शुद्ध नहीं है । जिनको प्रकार की पवित्रता कही गई है अर्थशौच सबसे बढ़ के है जो उसमें पवित्र है उसी को पवित्र कहना चाहिये । मिट्टी और जल से जो पवित्रता होती है वह पवित्रता नहीं है । आगे चल के और भी कहा है —

“अदिभर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति”

हाथ पाँव आदि अंग जल से शुद्ध और साफ होते हैं पर मन केवल सत्य से शुद्ध होता है । मन जिनका दृढ़ है और डिगा नहीं वही अपनी गाढ़ी मेहनत की कौड़ी को अनो करके मानेगा वह बेईमानी से अनुचित लाभ को सोना भी है तो मिट्टी का ढेला मानता है “परद्रव्येषु लोष्ठवत्” ऐसी ही के लिए कहा गया है । विलाइत में बहुत से ऐसे लोग हो गए और अब भी मौजूद हैं जिन्होंने शुरू में मोची और चमार की नौकरी तथा पेशा इखतियार कर गाढ़ी मेहनत के द्वारा ईमानदार रह जो कुछ लाभ उन्हें हुआ उसी

में बराबर उद्यम करते हुये अन्त में ऊँचे से ऊँचे पद पर पहुँचे। हमारे ही यहाँ हुल्कर, सेन्धिया और गाइकवाड़ के पूर्व पुरुष पेशवा के जूती बरदार या इस तरह के दूसरे निकृष्ट काम पर थे पर पेशवा ने इन्हें अपने काम में अति निपुण, सावधान और ईमानदार पाय क्रम-क्रम इतने ऊँचे अधिकार पर इन्हे कर दिया कि अब उनके वंशधर हिन्दुस्तान के प्रधान शासनकर्ताओं में है। बड़े-बड़े राजा महाराजाओं के ऊपर उनका दर्जा रक्खा गया है। गाढी मेहनत, ईमानदारी, और मुस्तैदी, ये तीन बातें रोजगारी के लिये बड़ी जरूरी हैं। बहुधा लोग अपनी बदकिसमती लिये रोते और पछताते हैं पर सच पूछो तो बदकिसमती से उनका इतना नहीं बिगड़ा जितना उनकी गफ़लत, बेपरवाही और जी लगा के मेहनत न करने से। अङ्गरेजी की एक कहावत है --

“ A barking Dog is more useful than a sleeping Lion.

“भूकता हुआ कुत्ता जियादे काम का है सोते हुये सिंह से” तात्पर्य यह कि हम बड़े योग्य और लायक हैं पर चौकसी और अपने काम में कैसे मुस्तैद रहना चाहिये बिल्कुल नहीं जानते तो हमसे वह अच्छा है जो बड़ा योग्य तो नहीं है किन्तु मुस्तैदी और चौकसी से चलता पुरजा हो रहा है।

छोटी-छोटी बातों को भी ध्यान में चढ़ाये रखना, मेहनत से मुँह न मोड़ना, हिसाब किताब आना पाई रखना, बीजक और माल की रवानगी में ठीक समय का शुद्ध खयाल रखना, ये बातें कुछ ऐसी भारी नहीं हैं कि चुस्न और चालाक रोजगारियों में बहुत कदर के लायक हो किन्तु छोटी-छोटी बातों की त्रुटियों को जोड़ने बैठो तो वे सब इतनी अधिक हो जाती हैं कि आदमी को मर्वथा बेकाम कर देती हैं और आगे को उसकी भलाई में बाधा छोड़ती हैं। कितनी बातों को हम हकीर और छोटी समझ उमपर ध्यान नहीं देते पर सच पूछो तो मनुष्य का जीवन ही उन छोटी-छोटी बातों से चल रहा है। जिनका समूह मिल कर न केवल हमारी जिन्दगी को फीकी वरन् हमारे चरित्र

को दगीला कर देता है। हमे चाहिये हम जिस धन्धे को कर रहे हैं उसे पूरा किये बिना न छोड़ें। दस काम ग्रन्थकचड़ा छोड़ देने से एक काम को पूरा उतार लाना अच्छा है। और-और बातों में हम कितने ही बड़े गुणी, नेकचलन और धर्मशील है किन्तु ग्रन्थ चुम्बक विद्यार्थी के समान आरंभ शूर है जम कर आदि से अन्त तक किसी काम को पूरा नहीं करते तो हम लोगो मे विश्वासपात्र न होंगे। बल्कि उसका अधकचड़ा काम जो उसने बिना पूरा किये छोड़ रक्खा है औरों के लिये बड़ी दिक्कत और तकलीफ का वाइस होगा।

हर एक चीज का क्रम विन्यास (Method) रोजगारी के लिये बड़ा प्रयोजनीय है। जो अपनी चीजो को अस्तव्यस्त न कर क्रम पूर्वक सजायके रखे हुये है वह ग्राहकों की कैंसी भीड़ आ जाय कभी आ जाय कभी धबड़ायगा नहीं एक घंटे का काम बीस मिनिट में कर डालेगा। जिस रोजगारी में ये बातें होंगी वह कभी रोजगार में घाटा न सहेगा और प्रतिदिन उन्नति करता रहेगा। ईमानदारी के प्रकरण में व्यापार करने वालों के सम्बन्ध में हमने यहाँ पर थोड़ा सा इसलिये लिखा कि ईमानदारी की कसौटी जैसा व्यापार में होती है वैसा और दूसरी बातों में नहीं हो सकती। रुपये पैसे के लेन देन में ईमानदारी एक उपलक्षणमात्र है। वास्तव में जो ईमानदार हैं वे अपने जितने काम और बर्तव हैं सब में स्वच्छता और सफाई रखने में नहीं चूकते और समाज में छोटे से छोटे और बड़े से बड़े लोगों के बीच जैसा विश्वासपात्र वे होते हैं वैसा बड़ा रुपये वाला और बड़ा विद्वान् नही हो सकता यदि व्योहार में सच्चा नही है। ईमानदार रह कर थोड़ी आमदनी से हम किसी तरह बड़ी कठिनाई से अपना दिन काटते हों तो यह उससे अच्छा है कि हम ईमानदारी को छप्पड़ पर रख बेईमान हो बहुत रुपया बटोर गुलछरें उड़ावें। सच मानो एक दिन परिणाम उसकी बेईमानी का इतना बुरा होगा कि जितना उसने अपने इस नीच कर्म से सुख भोगा है वह सुख भोगने का पलरा दुख

भोगने के बराबर का हो जायगा । न उस पर उस बेईमानी का फल हुआ तो श्रीलाद पर होगा । मसल है जितना पुरखों ने राज रजा उतना ही लड़कों ने भीख माँगा । अब इस कराल काल में ऐसे लोग कम जन्मते हैं, देवमूर्ति ऐसों को शतशः प्रणाम है ।

“यदि नात्मनि पुत्रेषु न च पुत्रेषु नप्तृषु ।
नत्वेव चरितो धर्मः कतुं भवति नान्यथा ॥”

अक्टूबर १९००

९--जातपाँत

हमारे देश में जाति का इतना जोर है कि अब तक इतनी हलचल हुई प्रायः बहुत सी पुरानी बातें लुप्त हो गई बहुत से मत मतान्तर ऐसे फैले जिसने इसे जड़-पेड़ से उखाड़ना चाहा। बौद्ध, मुसल्मान, ईसाई राज्य इस मुल्क में एक छोर से दूसरे छोर तक फैल चालचलन रीत व्यौहार सब को उलट-पुलट डाला पर यह जाति पिशाची अभी तक जैसी थी वैसी बनी हुई है। अणुमात्र भी हेर-फेर इसमें न हुआ। हमारे हिन्दू भाइयों के जितने काम हैं वे सब जाति के अटल और दृढ़ प्रबन्ध के अनुसार होते हैं चाहे वे काम ससारिक हों या पारलौकिक। देखा देखी या हमारे संपर्क से मुसल्मान और ईसाइयों में भी यह पहुँच गई और पहुँचती जाती है। एक यूरेशियन कैसा ही पढा-लिखा हो उसे अहल बिलाइती मेम कभी न बरेगी। अहल बिलाइती किसी यूरेशियन लेडी को ब्याहा कि जाति से च्युत हुआ। अपने बराबर वालों में बराबर का व्यौहार उसका फिर कभी न रहेगा। हम लोगो में तो ऊँचा-नीचा सम्बन्ध किये से केवल पाँति जाती रहती है पर और सब तरह का व्यौहार उससे जैसे का तैसा बना रहता है। पर यहाँ तो उसके साथ किसी प्रकार बर्ताव बराबरी का रहता ही नहीं। अहल बिलायती दोगले किरानियो से हाथ मिलाने से भी इनकार करेगा तो उसके बंगले पर आना जाना या उसके साथ उठना-बैठना खाना पीना कैसा ? मुसल्मानों में भी केवल दूध का बर्काव कर चाचा तक की लड़की ब्याह लेना रवा समझते हैं पर नीचा सम्बन्ध कर जाति नहीं दिया चाहते।

अब सोचना चाहिये वह जाति क्या वस्तु है और समाज पर उसका कैसा प्रतिफल होता है। बहुत लोगो का यह अनुमान है कि एक जाति के लोग एक पुरुष की सन्तान हैं जैसे एक गृह स्वामी की

सन्तान जहाँ एकत्र हो रहते हैं उसका नाम घर है। उसी तरह जब उसके लड़कों की सन्तति बढ़ी तो चार या पाँच पीढ़ी अथवा सात पीढ़ी तक कुनब, या घराना कहलाता है उपरान्त जितने उस कुनबे में होते हैं वे सब गोत्र कहलाते हैं। यहाँ तक तो अनुमान ठीक समझ पड़ता है। परन्तु इसके आगे जो लोग यह समझते हैं कि एक जाति के लोग सब एक पुरुष की सन्तान हैं यह ठीक नहीं क्योंकि हमारे यहाँ का एक यह नियम भी है कि जितने लोग एक पुरुष के सन्तान होंगे वे सब गोत्र के होने के कारण आपस में यौनिक सम्बन्ध कभी न करेंगे। एक गोत्र या एक घराना होने की यही बड़ी पहचान है कि दोनों में परस्पर लड़की लड़के का विवाह सम्बन्ध नहीं होता परन्तु एक ही जाति में ऐसा नहीं है। वरन् विवाहादिक सम्बन्ध सब एक जाति के भीतर ही होता है। इससे सिद्ध हुआ कि एक जाति के सब मनुष्य एक ही पुरुष के सन्तान नहीं हैं यदि एक ही पुरुष के सन्तान को जाति मानें तो भिन्न-भिन्न गोत्र की कल्पना क्यों कर हुई। भारद्वाज, गौतम, कश्यप, शाङ्गिल्य आदि भिन्न-भिन्न गोत्र एक ही जाति में पाये जाते हैं इससे मालूम होता है कि समस्त जाति की जाति एक ही पुरुष के सन्तान नहीं है।

और और देशों के समान हम लोगों में केवल धन से जाति में ऊँचाई या निचाई नहीं हो सकती। 'धनेनकुल' धन से कुल होता है इस वाक्य का खण्डन किसी कदर यही पाया जाता है जैसे बड़ई और लोहार का लड़का भी अधिक धन और प्रतिष्ठा प्राप्त कर लार्ड और ड्यूक की उपाधि पाकर ऊँची जाति में मिला लिया जाता है सो यहाँ अति दुर्घट है। शूद्र या अन्त्यज जाति के लोग बड़े धनी राजा बाबू तक हैं पर वे धन के कारण ब्राह्मण वा क्षत्रो बना लिये गये हो ऐसा यहाँ कहीं नहीं देखा गया। हमारी उन्नति के पथ में काँटा बोलने वाले जहाँ और बहुत से कारण हुए हैं उन में इस जाति विवेक को भी हम महा-अनिष्ट सर्व विध्वंसी केतु ग्रह के समान मानते हैं।

जाति के संबन्ध में दूसरा अनुमान यह भी है कि समय-समय पर जो बहुत से लोग एक ही प्रकृति वा स्वभाव वा काम के हुये उन्होंने आपस में मिल कर बिरादरी बना ली जिसको अंगरेजी में (ब्रदरहुड) कहते हैं, और अपने अपने नियम सबों ने बनाये कि जो कोई उन नियमों को भंग करे वह उस बिरादरी से बाहर किया जाय। जहाँ और बहुत से नियम हैं वहाँ यह एक नियम प्रायः प्रत्येक जाति में पाया जाता है कि विवाहादिक संबन्ध सिवाय अपनी बिरादरी के और कहीं न किये जायें। प्रथम इस देश में चार बिरादरी थी जो चार वर्ण के नाम से प्रसिद्ध थी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र। पीछे से बढ़ते-बढ़ते इनकी सख्या इतनी अधिक हो गई और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बसने और भिन्न-भिन्न स्वभाव और चालढाल के कारण उनका मेल आपस में इतना कम हो गया कि एक ही देश में एक एक बिरादरी के लोग छोटी-छोटी बिरादरी बना डाली। यहाँ तक कि अब देश भर में कितनी जाति है कोई ठीक-ठीक कह नहीं सकता। कब तक यह नई बिरादरी बनती रही और कब से इसका बनना बन्द हो गया यह भी कोई नहीं जानता। हाँ यह बात अलबत्ता देखी जाती है कि इन प्रत्येक बिरादरी के लोग जब तब दोलत्तियाँ अलबत्ता भाड़ते रहते हैं इस कारण उनमें जुदे-जुदे घड़े या टाट कुछ दिन के लिये ही श्वान लीला के विस्तार के समान खूब हाँव-हाँव भाँव-भाँव कर-कराय पीछे सब एक हो जाते हैं। बिरादरी या जाति की उत्पत्ति हम संक्षेप से कह चुके अब उसकी सामयिक दशा का कुछ वर्णन करते हैं।

जब जाति प्रथम ही प्रथम बनी थी तब उसके सब नियम ठीक ठीक थे। जो लोग उन नियमों को भंग करते थे वह पतित समझे जाते थे और बिरादरी के बाहर कर दिये जाते थे। खाना पीना आदि यावत् व्यवहार उनके साथ रोक दिया जाता था। इस भय से कोई उन नियमों के उल्लंघन का साहस नहीं करता था। परन्तु अब इस नई रोशनी के जमाने में सब बात अस्त-व्यस्त सी हो गई और होती जाती है। कही विद्या या धन के मद में उन्मत्त हो कही सर्वजित काम और

लोभ के चेष्टित के वशीभूत हो कही मूर्खता महाराणी के पुजारी बन नियमों की कुछ परवाह नहीं करते । जिसका परिणाम यह हुआ कि कोई बिरादरी अब शुद्ध न रह गई । कहने को बाला के शुक्ल, खाले के बाजपेयी परन्तु ब्राह्मणत्व की कही भलक भी नहीं बची । रहा भूठा कुलाभिमान सो उनके नस-नस में भरा हुआ है । इसी तरह का बिगाड़ क्षत्री वैश्य शूद्र सबों में देखा जाता है । इसका एक मुख्य कारण हमारे मन में यह भी खटक रहा है कि प्रायः जाति पाँति और बिरादराने के मामिलों में खूसट दिमाग वाले बाबा आदम के परदादा बुढ़ों ही की प्रधानता रहती हैं जो कट्टर कनसरवेटिव होते हैं अर्थात् परिवर्तन विमुखता जिनको जन्मघूटी के साथ पिला दी जाती है सशोधन या परिवर्तन के जो महाबैरी हैं और अब इस जाति पाँति के नियमों में परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक है । बिना जिसके यह सब निरा ढकोसला हो रहा है जो कुछ समाज को इससे यत् किंचित लाभ भी पहुँच रहा है सब छार में मिलता जाता है । जैसा बेहूदा तरीका बिरादरी का इस समय प्रचलित है उससे कभी आशा नहीं की जा सकती कि जाति पाँति के सत्यानाश बिना हुए उन्नति की हजार-हजार चेष्टा करने पर भी हमारी या हमारे देश की कभी तरक्की होगी । स्वाधीनता की नाक काटने वाली इस जाति पाँति की कुरीति देख यही मन में आता है कि हे परमेश्वर हमने कौन सा पाप किया था जिसका फल भोगने को ऐसी कुलच्छनी समाज में तूने हमें पैदा कर दिया । हमारे एक मित्र का कथन है कि (यदि हिन्दू शास्त्र सच है और हिन्दू-शास्त्र के अनुसार पुनर्जन्म भी सच है तो अब दूसरा जन्म हमारा हवश ऐसे कुदेश में या सहारा के रेगिस्तान में हो पर इस भारत सरीखी पाप भूमि में हम कभी न जन्मै) सो यह बात महज मजाक की नहीं किन्तु समझदार के लिये वास्तव में ऐसा ही चुभती है । नासमझ बेहया की कौन जिसे भला बुरा सब एक सा है ।

१०—जातीयता के गुण

पहले इसके कि जातीयता के गुण प्रगट कर दिखलावें यह जानना अति आवश्यक है कि जातीयता क्या वस्तु है और क्यों जातीयता का भाव पैदा होता है। मनुष्यों में जातीयता का भाव दो कारणों से पैदा होता है एक प्राकृतिक दूसरा व्यावहारिक। प्राकृतिक कारण जातीयता का जुदे-जुदे देशों का शीत उष्ण उर्वर अनुर्वर इत्यादि का तारतम्य है और इस कारण उन-उन देशों के रहने वाले मनुष्यों में शारीरिक और मानसिक भावों का भेद हो गया वही एक-एक जाति बन गई है। इसके अनुसार यूरोप के विद्वानों ने मनुष्य जाति के तीन भेद किये हैं। काकेसीय मागोलीय और ईथियोपीय। ये तीनों जाति भेद केवल स्थान विशेष में निवास के कारण मनुष्य के शरीर की गढ़न और गौर या श्याम वरण के अनुसार किये गए हैं।

पृथ्वी के जिन-जिन स्थानों में शीत की अत्यन्त अधिकता है और भूमि उस स्थान की अनुर्वरा और नैसर्गिक दृश्य वैचित्र्य (Natural beauty) विहीन है ऐसे स्थान के निवासी प्रायः सब ठौर एक से शील स्वभाव के होते हैं। ये लोग बहुधा निष्किंचन और धन शून्य होते हैं और इस कारण निष्ठुराचारी हिंसाविहारी प्रवृत्तिनापटु शठ मूर्ख विश्वासघातक होते हैं। आखेट इत्यादि से अपना पेट येन केन पाल लेते हैं। आखेट इत्यादि में अधिक परिश्रम करसे-करते सबल और साहसिक अवश्य हो जाते हैं। किन्तु उस स्थान में जहाँ वे रहते हैं किसी तरह की नैसर्गिक शोभा और प्राकृतिक दृश्य के अभाव के कारण उनकी बुद्धि स्फूर्ति विहीन होती है। इस जाति के लोग मध्य और दक्षिण अफ्रिका, मध्य एशिया, तिब्बत, तातार आदि अनेक देश के रहने वाले हैं। केन्द्र के समीप जो देश हैं वहाँ बड़ी शीत होने से उन देशों के मनुष्य भी ऐसे ही निष्किंचन और साहसिक हैं।

दूसरी श्रेणी के लोग वे हैं जो ऐसे स्थान में रहते हैं जो न अत्यन्त शीत है न अत्यन्त उष्ण है जहाँ को पृथ्वी कुछ उर्वरा और कहीं-कहीं नैसर्गिक शोभा सयुक्त है। यूरोप खण्ड के रहने वाले अधिकांश इसी श्रेणी के हैं जिनका नवाभ्युत्थान और सौभाग्य इन दिनों हर एक बातों में तरक्की के ओर छोर को पहुँचा हुआ है। भूमि यद्यपि यहाँ की बहुत पहाड़ी और अनुर्वरा है किन्तु योरोप वाले निज कलाकौशल और विज्ञान से पृथ्वी के सब खण्डों से धन संपत्ति में बढ़े हुए हैं और मनुष्य जाति मात्र को शिक्षा देने का धाना बँधे हुए हैं।

तीसरी श्रेणी के वे हैं जो ऐसे स्थान में रहते हैं जहाँ गरमी और सरदी दोनों समान भाव से होती है। छः ऋतुओं का समय-समय प्रकाश होता है। वहाँ की धरती उर्वर प्राकृतिक दृश्य वैचित्र्य की अधिकारी से सुशोभित रहती है। ऐसा देश प्राचीन भारत प्राचीन ग्रीस और प्राचीन इटली तथा मिस्र देश है। इनमें ग्रीस और इटली अपनी-अपनी उन्नति देख ठीक समय में उससे छुटकारा पाने का यत्न कर शीघ्र अपनी उन्नति की दशा को पहुँच गये किन्तु भारत के भाग्य में क्या बड़ा है सो कुछ जाना नहीं जाता। शताब्दी पर शताब्दी बीती जाती है किन्तु इसके दुर्भाग्य की दशा में कुछ अदल-बदल नहीं होती दीखती। जैसी अचेत दशा में भारत पड़ा सो रहा है उससे बोध होता है मानो इसकी नाड़ी में जीवनी शक्ति हुई नहीं इसमें कुछ भी दम होता तो अवश्य उठने की चेष्टा करता।

हम ऊपर जातीयता का एक दूसरा कारण व्यावहारिक कारण कह आये हैं। काम साधने के लिये मनुष्य का मनुष्य के साथ जो परस्पर संयोग एकता उद्यम और साहस है वह व्यावहारिक कारण है। जातीयता का अवान्तर कारण प्रतिवासिता अर्थात् पड़ोस का निवास भाषा मत या धर्म आदि है। पड़ोसी का पड़ोसी के साथ परस्पर आलाप परिचय और सुहृद्भाव के द्वारा दोनों में जो एक

प्रकार का विश्वास और सहानुभूति हो जाती है उसी सहानुभूति और विश्वास के बल वे दोनों किसी बड़े काम के साधन निमित्त जहाँ तक एकता के सूत्र में बँध सकें उसी को हम व्यावहारिक कारण जातीयता का कहेंगे। सहानुभूति और विश्वास यही दो जातीयता नदी के दो किनारे हैं। एक भाषा एक मत वा एक धर्म एक ही कुल गोत्र या वंश में जन्म आदि से भी सहानुभूति और विश्वास वृक्ष की जड़ पुष्ट पड़ती जाती है। हम पहले लिख चुके हैं कि प्रयोजन की सिद्धि इस जातीयता का फल है सो जातीयता बिना सहानुभूति के अकेली भाषा अकेला धर्म वा मत से कभी नहीं होती वरन् अलग-अलग ये तीनों जातीयता के विरोधी है।

हिन्दुस्तान में जातीयता और सहानुभूति इसीलिये नहीं होती कि यहाँ मत और भाषा की विभिन्नता बहुत है। संस्कृत यहाँ की बोल-चाल की भाषा किसी समय थी यह भी इसी से प्रगट होता है। प्राचीन भारत जिस समय उन्नति की दशा में था और जातीयता का यहाँ पूर्ण प्रादुर्भाव था उस समय अवश्य संस्कृत देश भर की एक भाषा वैसे ही रही जैसी अब अंगरेजी यहाँ होती जाती है। पीछे प्राकृत ने जोर पकड़ा जो एक समय ग्रामीण और नीच लोगों की भाषा थी और वहीं मँजते-मँजते यहाँ तक पुष्ट पड़ गई कि संस्कृत को दबा लिया और अनेक भेद उसके हो गये और भेद होने के साथ ही देश में जातीयता को भी टुकड़े-टुकड़े कर डाला। अब मत को लीजिये जब तक देश भर में एक ही वैदिक धर्म था जुदे-जुदे संप्रदाय और मत नहीं फैले थे जातीयता भी सर्वाङ्ग सुन्दर हो प्रकाशमान थी। उपरान्त पचायतन पूजा प्रारम्भ हुई तब तक भी जातीयता के इतने खण्ड नहीं हुये थे। जब से अनेक धर्म और संप्रदाय चले तब से जातीयता के सँकड़ो टुकड़े हो गये। देश जो दुर्दशा भोग रहा है वह प्रत्यक्ष है और न कोई आशा है कि जब तक ये विविध संप्रदाय प्रचलित रहेंगे तब तक फिर जातीयता हम लोगों में कभी आ सकेगी।

जिस समय यहाँ वैदिक धर्म प्रचलित था ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र चारों मिलकर भारत में आर्य के नाम से विख्यात थे। उस समय इनकी शोभन मूर्ति पर मोहित हो यवनों की दृष्टि इन पर पड़ी और उन्हें पराजित कर उन्हीं के अंग में इन मुसल्मानों ने भी स्थान पाय बस गये। आर्यों ने भी इन्हें अपना अंग बना लिया ऐसा कि दोनों एक शरीर हो गये। पहले शूद्रों को जीत आर्यों ने उन्हें अपना अंग बना लिया था। अब ये यवनों से पराजित हो आप उनके अंग बन गये सही पर ऐसा जुट सा गये कि दोनों अंग एक हो अनेक शिराओं से रक्त संचालन होना आरम्भ हो गया। यहाँ तक कि उठना बैठना, नशिस्त बरखास्त, रीति-नीति-व्यवहार रंग-ढंग सब एक हो आर्य से यावनिक हो गया सही पर कितनी बातों में जातीयता का आभास मात्र बना ही रहा। इसी समय समुद्र पार से अनेक जाति की श्वेत मूर्ति यहाँ आ उपस्थित हुई। आर्य लोग यद्यपि अपनी पहली आर्य जाति की जातीयता खो बैठे थे तो भी इस नई प्रकार की यावनिक जातीयता में आर्य ऐश्वर्य सेवा महा बात व्याधि से पीड़ित हो ऐसे बातुल और उन्मत्त हो गये थे कि इन श्वेत मूर्तियों ने अपने को वैद्य विदित कर इन आर्यों से कहा कि हम तुम्हारे उन्माद रोग की चर्चा सुन समुद्र के पार से आये हैं और तुम्हारे क्रपा पात्र बना चाहते हैं। तुम हमारी चिकित्सा मन लगा के करो तुम्हारी सब बाई हम जल्द पचा देंगे। तुम्हारे जोड़-जोड़ में अनेक शोषक द्रव्य छोड़ जातीयता के शरीर का रसमात्र खींच लेंगे और ऐश्वर्य की गरमी से आँख में जो मोतियाबिन्द छा रहा है जिससे तुम्हें देख नहीं पड़ता उसमें दारिद्र्य महारस का एक ऐसा रसा-जन छोड़ देंगे कि उससे इस चर्म चक्षु की क्या तुम्हारे हिये की जो फूट रही है वह भी खुल जायगी तब तुम्हें अनेक प्रकार के कौतुक सूझ पड़ने लगेंगे। भारतवासियों ने इनकी कमनीय कोमल मूर्ति और सुमधुर वाक्यावली पर मोहित हो कुछ मुसकिया इनकी चिकित्सा स्वीकार कर लिया। जब तक अनेक कल बल छल से शरीर का थोड़ा थोड़ा रस खिंचता रहा तब तक जैसा किसी को सह्राने में सुरसुरी

का मजा मिलै। किन्तु रस खिंचते-खिंचते जब ये अत्यन्त दुर्बल और मृयमाण हो गये तब चिल्लाने लगे। तब वे भिपकवर बोले—देखो गुल शोर मत मचाओ जब तक तुम्हारे शरीर में थोडा भी बाई का असर बचा रहेगा तब तक तुम किसी काम के न रहोगे लिखा भी है—

‘दारिद्रं परमाजनम्’

तुम्हारी आँख खोलने को यही बडा श्रेष्ठ रसाजन है। यहाँ तक कि भारत अब सर्वथा उत्थान शक्ति रहित हो गया परन्तु उस अजन से जो इसकी आँख खुल गई तो अब यह बूँद का चूका घडा ढरकाने की भाँत तरह तरह की बाते साँच रहा है। अब लोग अपनी अनेक भूल-चूक को पछताय इसका अनेक कारण कह रहे हैं पर यह किसी के मन में नहीं समाता कि यह केवल जातीयता की सहानुभूति के न होने का कारण है। और फिर जातीयता के आने की न कोई चेष्टा कभी की जाती है। ऐक्य, सहानुभूति, देश भर की एक भाषा, एक मत, आदि जातीयता के उत्कृष्ट गुण जब तक न आवेंगे तब तक भारत का पुनरुत्थान सर्वथा असभव है।

फरवरी १८६७

११---जातियों का अनूठापन

(National Character)

मनुष्य व्यक्ति के चरित्र का विचार कई एक रीति से हो सकता है । और जिस रीति पर आरुढ़ हो इसकी मीमांसा कीजिये उस ढंग के वैसे विचार होंगे । चाहे मनुष्य के धर्म अथवा सच्चरित्र सम्बन्धी गुणों का विचार कीजिये या चाहे इसी के निकट का कोई प्रश्न उठाकर उस पर कुछ शंका समाधान कीजिये अर्थात् सच्चरित्र से सामाजिक क्या लाभ है इन सब बातों के विचार से हमको इस लेख में कुछ प्रयोजन नहीं है किन्तु हमको यहाँ उस मुख्य बात से प्रयोजन है जो इस प्रकार की मीमांसा के भी पूर्व विचार में आनी चाहिये और वह यह बात है कि जातियों का अनूठापन उस देश के इतिहास का फल है ।

जब हम किसी एक जाति पर ध्यान देते हैं तो निश्चय उस जाति के आचरणों से कुछ ऐसी बातें लक्षित होती हैं जो खास उसी जाति में पाई जायंगी और वे बातें ऐसी न होंगी जो मनुष्य मात्र में साधारण रीति पर पाई जायं क्योंकि न तो कोई जाति इतनी भली है कि उसमें कोई बुरे होंगे ही नहीं । न देश का देश इतना बुरा हो सकता है कि उस जाति में एक भी भला न हो । इसलिये उन बातों को खोजना चाहिये जो किसी जाति का एक विशेष धर्म है और इसकी मीमांसा हम दार्शनिक रीति पर करते हैं अर्थात् जब कार्य समझ में नहीं आता तब यह चिन्ता मन में होती है कि इसका कारण दूढ़ है और इस सम्बन्ध में कारण की खोज करने पर उस जाति या देश के पूर्व इतिहास से बढ़कर और क्या सहारा हो सकता है । अब पहले इस बात का ज्ञान स्पष्ट रीति पर होना चाहिए कि किसी एक काल में जो हम किसी जाति का कुछ अनूठापन पाते हैं वह निरा आकस्मिक नहीं है क्योंकि यदि आकस्मिक मान लिया जाय तो बस विचार का अन्त हो गया और कारण का समझना तो

दूर रहा तज्जनित जो कार्य है वह भी स्पष्ट रीति से मन में न आवेगा सुतराम् ऐसी बातों का कोई आकस्मिक परिणाम भी हो सकता है यह कदापि न मानना चाहिए। इससे बस निश्चित हुआ कि जातियों का अनूठापन तैयार करने में थोड़े से प्रधान कारक की अत्यन्त आवश्यकता है तो अब खोज इसी बात की है कि विशेष जाति में किसी विशेष प्रकार का अनूठापन आ जाने के लिये कारक क्या है और उनका क्या और कैसे असर होता है।

ऊपर हमने 'किसी एक काल में' ऐसे वाक्य का प्रयोग किया है अब यह प्रश्न उठ सकता है कि अन्त को इस रीति पर तय करने की अवधि क्या और कैसे होगी। काल तो इतिहास की सुगमता के लिये सर्वथा एक कल्पित पदार्थ है। किसी एक काल में कोई जाति का अनूठापन उस प्रकार का क्यों है यदि इसका लगाव आप उसी काल के पूर्व के इतिहास से रखते हैं तो उस पूर्व-काल के इतिहास या दूसरे पूर्व काल के इतिहास से रखना पड़ेगा। और इसी तरह यह श्रृङ्खला कभी टूट हीगी नहीं इसलिये इस अनवस्था दोष का निराकरण हो हीगा नहीं जब तक कहीं एक स्थल पर ठहर और इसी श्रृङ्खला में कहीं खण्ड कल्पित कर अपने प्रयोजनीय विषय के विचार पर आरुढ़ न हो जायेंगे अर्थात् किसी जाति के इतिहास में कोई खास वस्तु से विचार चलावें और इस उत्तम रीति को जब हम अपने मतलब पर लगाते हैं तो यह देखते हैं कि जब हमारा प्रश्न ही मनुष्य व्यक्ति के जाति का अनूठापन नितान्त ऐतिहासिक है तो इसलिये जहाँ इतिहास हमको सहारा न देगा वहाँ निश्चय हम को ठहर जाना पड़ेगा और इसी बात को और स्पष्टतर रीति पर यों कह सकते हैं कि किसी एक जाति को जब से हम इतिहास में देखते हैं तब से हम उसमें वही विभेदक गुण पाते हैं जो मानो उसी जाति का लक्षण है। ऐसी बातों पर ध्यान देने से यह समझ में आता है कि किसी जाति के चरित्र के सम्बन्ध में अनूठापन का बीज कोई वस्तु है अर्थात् वे दो चार बातें किसी जाति के बिगड़ी या बनी दशा में आदि से पाई जाती

है उन्हें आप एक जाति से दूसरी जाति को भिन्न रखने का बीज कहें तो अनुचित न होगा और उस देश के उपरान्त के इतिहास का असर इसी बीज को पुष्ट करने में देखा जाता है। अथवा ज्यों-ज्यों वह जाति उन्नति करती जाय कालान्तर में यही बात विविध पुष्ट रूपों में देखी जायगी और कुछ काल के उपरान्त प्राकृतिक और ऐतिहासिक कारणों से जब इन्ही बीज गुणों में एक प्रकार की पुष्टि आ गई और वह जाति वैसे ही बराबर उन्नति करती गई तो उसी प्रकार की और पुष्टि दिखाई देगी। पर यह भी देखा जाता है कि किसी संयोग से ऐसी विपरीत ऐतिहासिक घटनाएँ हुई हैं जिनसे उन्नति के बदले उस जाति में अवनति और ह्रास की सूरत बँधी तो स्पष्ट है कि उस जाति के गुणों में भी अवनति और हानि की शकल दिखाई दे और तब से वहाँ वह जाति अपने उत्कर्ष से ढल जायगी और अच्छी बातों का होना उसमें बन्द हो जायगा।

यहाँ तक हमने सामान्य रीति पर जातीय उन्नति और अवनति के नियम कहे पर खूबी इन नियमों की किसी एक मुख्य जाति पर लगाने से और उनका पूरा-पूरा असर उस जाति पर दिखलाने में है। हम समझते हैं सब से उत्तम उदाहरण हमको अपनी ही जाति पर लगाने के अतिरिक्त और कहाँ मिलेगा। बहुत आदि काल से आरंभ कर हम जब से इस जाति को लक्ष्य करते हैं तो उस विभेदक गुण का बीज पाते हैं और इसका नाम मननशीलता रखेंगे। यद्यपि ससार में बहुत से मजहब हैं जिनमें बड़ा-बड़ा उत्कर्ष किया गया है पर 'मुनि' और 'आश्रम' के जोड़ की कोई बात हम ससार के किसी मजहब में नहीं पाते। यह बीज गुण जो हमारी जाति को औरों से अलग करता है क्यों ऐसा है इसका उत्तर चाहे हम न दे सकें पर यह तो अवश्य कहेंगे कि जब से इतिहास का लेश भी इस जाति में पाया जाया है तभी से प्राकृतिक कारणों ने इस मननशीलता की जड़ डाल रखी थी। इन प्राकृतिक कारणों से हमारा प्रयोजन यहाँ के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों, बड़े

लम्बे चौड़े मैदानों में है अथवा आबहवा जो अफ्रीका देश के समान न अत्यन्त उष्ण या तीव्र न लापलैण्ड सरीखे शीत प्रधान देश के सदृश अत्यन्त शीतल वर्ष में बराबर से छ. ऋतु का होना, पैदावारी भी थोड़ी मेहनत में बहुत सा पैदा होना इत्यादि से है। और ये ही सब प्राकृतिक गुण ऐसे हैं जिनसे इस जाति के अनूठेपन (National Character) का बीज बोया गया है।

इसी मननशीलता के कारण हम देखते हैं कि केवल मनन करने के जो विषय हैं उनमें यह जाति इतनी उत्कर्ष प्राप्ति किये है कि जिसके जोड़ का गुण ससार भर की किसी जाति में नहीं देखा जाता और यही कारण है कि हम लोगों के यहाँ धर्म बहुत जल्द और बहुत अधिक चमका। जब और-और जाति अमभ्यता के अन्धकार में पड़ी टटोल रही थी हमारे यहाँ ऐसे-ऐसे सूक्ष्मानुसूक्ष्म सिद्धान्त निकाले गये जिसकी बारी-कियाँ योरोप की समझ में अब आने लगी हैं। पर जहाँ इस मनन-शीलता में सब गुण हैं वहाँ बहुत से अवगुण भी इससे पैदा हुये। इस सूक्ष्मानुसन्धान के पीछे दौड़ने से बहुत सी महोपकारी पदार्थ विद्या सम्बन्धी स्थूल बातें रह गईं। इसी मननशीलता के कारण अकर्मण्यता इनकी नस-नस में घुस गई और कितने प्रकार के विज्ञान और “साइन्स” जिनमें भरपूर उद्यम और प्रागल्भ्य (Activity) का काम पड़ता है उन्हें शान्ति सहयोगिनी इनकी मननशीलता ने होने ही न दिया। धर्म सम्बन्धी उत्कर्षता निस्सन्देह अति उत्तम है किन्तु इसके साथ ही यह भी हुआ कि इस धर्म की उत्कर्षता और पारलौकिक चिन्तन ने समाज और देश के हित की स्थूल बातों को इतना दबा दिया और उन सब हितकारी उपायों के स्थान में ऐसी टॉग अड़ाया कि उनका लेश भी न आने पाया। “मोरालिटी” जिसके लिये कोई उचित शब्द हमारी भाषा में मिलता ही नहीं बिल्कुल मजहब होगई। मजहब से कुछ सरोकार न रख स्वच्छन्द ‘मोरालिटी’ की बुनियाद पाना असम्भव सा

हो गया। वैद्यक में मजहब जा घुसा, ज्योतिष में मजहब जा पैठा ! नीतिशास्त्र उसी मजहब की एक अङ्गुली ही है।

यूरोप की सी स्वच्छन्द पालिटिक्स क्या है ? सो हम जानते ही नहीं। इसका तो मानो बीज ही मारा पड़ा। कामन्दक और चाणक्य का नीतिशास्त्र अथवा मनु और महाभारत में जो राजधर्म लिखा गया है वह सब उससे बिल्कुल निराला है जिसे हम पालिटिक्स के द्वारा यूरोप के क्रम पर स्वत्वर्क्षा 'इण्डि-विडुअल राइट' और 'प्रिविलेज' की बुनियाद कहेंगे। यहाँ तक कि इन बातों का ध्यान भी कभी उनको न हुआ। एक मनुष्य या जाति केवल एक तरफ तरक्की कर सकती है जिन बातों को आप अच्छा समझते हैं और जो आपके आइडियल्स हैं उन्हीं से आपके जीवन के सब काम नियमित होंगे। इसलिये इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है कि पारलौकिक बातों के अनुसन्धान में लगे हुये हमारे पूर्वजों का चित्त क्षणभर के वास्ते भी राजनैतिक तत्वों की ओर न झुका हो। अब इसी के तात्पर्य में अङ्गरेजा की दशा पर ध्यान दीजिये तो यह बात देखी जाती है कि जैसा हमारे यहाँ धर्म और मजहब नस-नस में घुसा है वैसा ही आदि ही से अङ्गरेजों का बीज विभेदक गुण हम स्वच्छन्दता पाते हैं। यही कारण है कि बहुत जल्द उनका इतिहास राजनैतिक स्वच्छन्दता की लड़ाइयों के लिये प्रसिद्ध हो गया। जो लड़ाइयाँ किसी शकल में वे बराबर चलाते ही गये जब तक उन्होंने मनमानी राजनैतिक स्वच्छन्दता न पा ली। इसी स्वच्छन्दता की इच्छा को यदि हम बीज मान ले तो अङ्गरेजों का इतिहास समझने में हमको केवल सुगमता ही न होगी बल्कि एक-एक कल-पुञ्जा इस इतिहास का हमको स्पष्ट हो जायगा। जिस समय से कि इंग्लैण्ड के साक्सन लोग वहशियों की तरह रहते थे उसी समय से इस स्वच्छन्दता की इच्छा को हम इस अङ्गरेजी जाति में पाते हैं और उसी का परिणाम उनकी राजनैतिक स्वच्छन्दता और उत्कर्ष है।

चाहे धर्म सम्बन्धी आदि एकता से आप और-और तरह का लाभ माने पर देश की उन्नति और वास्तविक भलाई करने का द्वारा हम राजनैतिक एकता ही को मानेंगे । जब तक कोई जाति एक राजनैतिक समूह न होगी जिसका एक ही राजनैतिक उद्देश्य है और जिस जाति के लोग एक ही राजनैतिक खयाल से प्रोत्साहित नहीं हैं तब तक आप उस जाति की सम्पत्ति और वृद्धि की बुनियाद किस चीज पर कायम रखेंगे ? हम देखते हैं अङ्गरेजों के इतिहास में बहुत जल्द राजनैतिक एक जातित्व आ गया जिसके कारण उनके जाति की उन्नति चरम सीमा को पहुँचने लगी और उसी के विपरीत हम देखते हैं कि राजनैतिक बन्धन न होने से बहुत जल्द हमारी जाति तीन तरह हो गई । मनुष्यों के सम्बन्ध में “प्रारब्ध” कुछ है ऐसा आप मानते हैं, अस्तु, जाति के सम्बन्ध में तो आपको यह अवश्य मानना पड़ेगा कि अपना इतिहास कोई जाति आप स्वयं बना लेती है । हम ऊपर कह आए हैं कि अङ्गरेजों में राजनैतिक एकता के कारण उनके देश की वास्तविक उन्नति हुई उसी के विपरीत राजनैतिक एकता न होने से हमारा ह्रास हुआ और आगे चलकर इसका यह परिणाम हुआ कि अङ्गरेज जाति ने अपना इतिहास अपने अनुकूल कर लिया । वही हमारे जाति का इतिहास भक मार के हमारे प्रतिकूल हो गया और आपस की फूट से बची-खुची जो कुछ ताकत रह भी गई थी उसे विदेशीय विजेताओं ने आकर चूर-चूर कर डाला । इसी कारण यह बात यही देखी गई कि वह देश जहाँ की सम्पत्ति इतनी अधिक थी जिसे लूट-लूट और-और मुल्क वाले बन गये और बनते जाते हैं सदा विदेशीय जेताओं का शिकार बना उनके पजे में पड़ा रहा और कभी अपनी दशा को सोचा तक नहीं तब उससे निवृत्त होने की सामर्थ्य पाना तो बड़ा दूर रहा । जहाज चलाने की विद्या में तरक्की करना और जहाजों में चढ़कर अपने देश का वाणिज्य दूसरे दूर देश में ले जाना और वहाँ का अपने देश में लाना इत्यादि बातों में उद्यम और

प्रागल्भ्य (Activity) को दरकार थी इसलिये ये बातें हमारे यहाँ सपने की सी हो गई।

दूसरे एक कारण यह भी है कि जब पेट भर खाने को होगा तो सब और खयालन दौड़ेंगे। इसी कारण अङ्गरेजों के इतिहास में हम बराबर देखते हैं कि किसी समय अङ्गरेजों ने किसी का कोई खयाल मंगनी माँग अपनी उन्नति नहीं किया जैसे हम उनसे उन्नति करने वाले खयालत माँगने को लज्जा रते हैं वरन् उनके इतिहास में एक से एक नवीन सोचने वाले हर एक काल में हो गये हैं। हिन्दू और अङ्गरेज इन दो जातियों का पूरा इतिहास दर्शाना इस लेख में हमारा उद्देश्य नहीं है पर बीज विभेदक गुणों की पुष्टि हम समझते हैं कि हम अच्छी तरह दिखा चुके और यह भी दिखा चुके कि प्रत्येक जाति किस तरह अपने अनुकूल या प्रतिकूल अपना इतिहास बना कर उन्नति अथवा अवनति करती है।

इस सब लेख का सारांश हम यों कह सकते हैं कि यदि भारत का उद्धार अब किसी तरह हो सकता है तो शान्ति सम्पादक अकर्मण्यता वाले गुणों से नहीं जिनके लिये हम अब तक प्रसिद्ध थे और जिसने हमको इस दशा तक गिरा दिया वरन् अङ्गरेजी जाति के साथ टक्कर खाने से और उनसे प्रगल्भता (Activity) सम्पादक उद्यमशीलता वाले गुणों के सीखने से। हम आशा करते हैं हमारे पाठकवृन्द इस लेख से जातियों में अनूठापन क्या है भरपूर समझ गये होंगे, और यह लेख किंचित क्लिष्ट हो जाने के लिये हमारा अपमान न करेंगे।

जनवरी, १८८७

१२—हिन्दू जाति का स्वाभाविक गुण

गीता में भगवान् कृष्णचन्द्र ने गुण कर्म के विभाग पर बड़ा जोर दिया और सिद्ध कर दिया है कि मानव जाति का बनना बिगडना सत्त्व रज तम इन गुण और सात्विकी राजसी तामसी इन तीन प्रकार के कर्म पर निर्भर है । इन्हीं गुण कर्म के विभाग के अनुसार हमारा यह लोक और परलोक दोनों बनता और बिगड भी जाता है । इन्हीं बातों पर लक्ष्य कर आज हम हिन्दुओं का स्वाभाविक गुण अपने पढ़ने वालों को दरसाया चाहते हैं । इसमें सन्देह नहीं हिन्दू जाति में अब भी अधिकतर लोगों में स्वाभाविक सरलता सिध्दाई आर्जव आदि देख; या चाहे यों कहिये इनमें जैसा गाऊदीपन है, उनसे यही बोध होता है कि स्वभावतः इनकी सात्विक प्रकृति है । प्रारम्भ में जब इनका पूरा अभ्युदय था और जिस समय इस भूमण्डल पर केवल यही यही थे आस पास के जितने देश और उन-उन देशों के रहनेवाले जन-समूह या तो नितान्त असभ्य और वन्य थे या किसी जनपद के निवासी कुछ मनुष्यत्व अपने में रखते थे तो बहुधा तो उनमें तामसी प्रकृति के थे । असुर, राक्षस, दस्यु, दानव, गन्धर्व, किन्नर या कपुरुष उपाधि धारी हुए । सात्विक प्रकृति किसी किसी में कही लेश मात्र को पाई गई । इस बात के साक्षी पुराणों के अनेक इतिहास कथानक और किवदन्ती हैं । पुराण ही क्या वरन् सहिता और ब्राह्मण भाग की अनेक गाथाएँ भी इसमें प्रमाण हैं । इससे तो लाचारी है कि हमारे नई तालीम वाले अपने नये इस्लाम के जोश में बिना कुछ सोचे समझे सहसा कह डाले कि वह सब गप्प कवि या ग्रन्थकर्ताओं के मस्तिक की कारीगरी, किस्से कहानियाँ दन्तकथाएँ या पढ़े-लिखे लोगों के दिल बहलाव है किन्तु तले तक डूबकर खोजते रहो तो यही पता लगता है कि यहाँ की पुरानी आर्य जाति जो अब हिन्दू के नाम से विख्यात है चरित्र की कसौटी में सात्विक वृत्ति का बंसा ही एक

उदाहरण है जैसी प्रतिभा, धारण शक्ति, विचार शक्ति, आदि गानसिक व्यापार में इन धरातल पर अनुपम और अप्रतिद्वंद्वी हैं । इसकी कुशाग्र बुद्धि “शागोल्लीट” खराद पर कहाँ तक तीक्ष्ण हो सकती है । यह एक नहीं बरन् बीसो बार के कपिटीशन संघर्ष में सेद्ध हो चुका है । जहाँ प्रस्पर्द्धियों के मुकाबिले ये आगे ही बढ़े देख पड़े ।

इनके और और उत्तम गुणों की समालोचना आगे चल के करेंगे । हमले उनकी धर्मभीरुता का विचार करते हैं । हमसे कोई अधर्म न बन पड़े जिसमे हमारा परलोक बिगड़े और ईश्वर का कोप हमारे ऊपर आवे । इनके अकुटिल सरल चित्त में प्रतिक्षण डमका ध्यान रहता है और यह ख्याल इतना पोढ़ा पड़ गया है और इतनी मजबूती के साथ इमने जड़ पकड़ लिया है कि किसी तरह उखाड़े नहीं उखड़ता । परिणाम मे ये अनेक सुखद पदार्थों मे वंचित रह जाते है परलोक में उसके सेवन या धारणा मे बाधा होगी इसलिए उन पदार्थों का बरकाते है । कितने खाद्य पदार्थ इन लोगों मे जो अस्वाद्य मान लिये गए है । उसका कारण यही है कि कितनी वस्तु जो मात्त्विक नहीं है इसलिये उनके भोजन पान या सेवन से हमारी बुद्धि पर तामसी असर पड़ेगा । बुद्धि मे जब तमोगुण आया तब कौन सा अकार्य करने को बच रहा और अकार्य बन पड़ा तब यह लोक परलोक दोनों मे कुगति होने मे क्या कसर रही । यह सब ख्याल कर कितनी चीजों का भोजन और पान तो दूर रहे उनका स्पर्श भी ये बचाते है । भारत भूमि की सीमा के बाहर रहने वाली जाति में ऐसे निन्दित घृणित पदार्थों का पान भोजन सेवन देख इन्हे घिन हुई और उन्हे ये म्लेच्छ कहने लगे । पीछे इन्ही म्लेच्छों का दल बढ़ता गया और भारत पर आक्रमण के उपरान्त इतना घिष्ट-पिष्ट यहाँ के लोगों का उनके साथ बढ़ गया कि ये भी अनेक अनेक आचरणों में उनके सदृश हो अपने को आध्यात्मिक विषय में नीचे

गिरे देख भी अनदेखी कर गये और करते जाते हैं। उन गिरे हुआ का समूह प्रतिदिन अधिक होता गया और होता जाता है जो शुद्ध आचार के बचे हैं उन बेचारों पर मूर्खता, अत्याचार दीनावातिली का दोष आरोपित किया जाता है। समय का प्रभाव तो है। जो गुण था वह दोष में शामिल किया गया। हमारी समझ में गुण जो इनमें दोष हो गया उसका यही कारण मालूम होता है कि ये धर्मवृक्ष के मूल को सीचना तो भूल गए दाली और पत्तों को सीचने लगे। परस्पर की सहानुभूति, अपने देश और जाति का अनुराग, स्वत्व रक्षा, स्वत्वाभिमान आदि मूल सेवन था सो सब न जाने कब से छोड़ बैठे। खान पान और आचार-विचार की छिलावट के प्रचार संचार में पड़े मड़ते हुए बैठे रहे जिनसे ये घिनाते थे वे इन्हें लात मार इनके प्रभु और शासन कर्त्ता बन बैठे। यहाँ तक शान्ति और धर्मभीरता ने प्रभुशक्ति और मुल्की जोश की अग्नि को इनमें प्रशान्त कर दिया कि सर्वथा दास दीन हीन पराधीन हो—

‘कोउ नृ होहि हमें का हानी
चेरी छोड़ न होइब रानी’

को पढ़ते हुए सतोष कर बैठ रहे।

अब दूसरी बात इन्द्रियनिग्रह या दमन उसकी समालोचना करते हैं। अनेक तामसी भोजन को जो इन्होंने बचाया उसका एक यह भी कारण था कि पातजलि के योग सूत्र ‘आहारात्सत्त्वशुद्धिः’ के अनुसार तामसी वस्तु के सेवन से निग्रह की कौन कहे इन्द्रिय चाचल्य बहुत अधिक बढ़ जाता है। धर्मशास्त्र वालों ने दो तरह की पवित्रता कहा है बाहरी और भीतरी और इन दोनों तरह की पवित्रताओं का बड़ा विस्तार किया गया है। अंत को बाहरी पवित्रता पर विशेष जोर दे जैसा ‘नवारिणा शुध्यति चान्तरात्मा’ इत्यादि अनेक वाक्य पाये जाते हैं। भीतरी पवित्रता में आभ्यन्तर शौच को मुख्य माना है। यह आभ्यन्तर शौच और है क्या? यही आत्मदमन—विदेशीजन जो हमको

हर एक बात के सिखलाने का दावा बाँध रहे हैं उनके यहाँ बाहरी सफाई की कितनी अधिक तरक्की है पर भीतरी सफाई में कुछ भी नहीं। पादरी साहबान जुदा ही तान भर रहे हैं कि हिन्दूओं में 'मोरा-लिटी' दमन शिक्षा हुई नहीं और वह केवल ईसाई धर्म के द्वारा प्राप्त हो सकती है। जरा इस घमड़ और विकल्थन पर ध्यान दीजिए और उनके मत की जो कुछ पूँजी या मूल ग्रंथ अथवा दमन सामग्री उनके धर्म में है उसे टटोलिये। हमारे यहाँ षट् दर्शनो में एक पातजल दर्शन है जिसमें योग का अन्तिम निचोड़ इस दमन शक्ति का प्राप्त करना ही है जिसका आधे के लगभग केवल यम-नियम के विवरण में है और अन्त में इस बात को सिद्ध कर दिया है कि उन यम-नियम के अभ्यास से इन्द्रियो का निग्रह होता है। निग्रहीतेन्द्रिय अपने चंचल मन को स्थिर कर चित्त की वृत्तियों के निरोध से परमात्मा में मन लगा सकता है।

इन सब बात से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हमारे हिंदू कितना दमन की ओर प्रवण चित्त थे। किन्तु अत्यंत पछतावा और महादुःख होता है कि विजातियों का घनिष्ट संपर्क पाय ये कितना बिगड़ गये और इनके सात्विक स्वभाव और गुणों में बराबर कमी होती आई। अब जो इतने नराधम और अपाहिज हो गए यह सब उसी घनिष्ट सबध का फल है। परिणाम में चिर सचित्त अपने पूर्वजों की पूँजी भी गँवाय बैठे, यवनानुयायी हो सर्वथा पौरुषेय गुण विहीन हो गये। जरा सी बातों के लिए दूसरे का मुँह जोहते हैं। विष-लता के समान अकर्मण्यता सब ओर छा भारत की उर्वरा भूमि को ऐसा छेक लिया और यहाँ इतना विस्तार हमने पाया कि उद्यम, साहस, आत्मगौरव, जातीयताभिमान, उत्तेजना आदि पौरुषेय गुण जो आत्म-दमन के सहकारी और सदा साथ-साथ रहने वाले हैं उनके बीज को अब बोने का कहीं अवकाश ही न रहा। जैसे आधुनिक विज्ञान प्रकृति के परिवर्तन और उसे नष्ट-भ्रष्ट करने में वज्रपात सा हुआ वैसे ही

से होता है । जैसे जो पर्वतस्थली हैं जहाँ भोजन आदि पदार्थ जिनसे मनुष्य का जीवन चल सकता है बड़े क्लेश से संपादित हो सकता है । वहाँ के मनुष्य बहुधा अति परिश्रमी व्यवसायी कुशाग्र बुद्धि दिल के कड़े और अनुदार प्रकृति के होते हैं । जो समुद्र के तट के देश में रहनेवाले हैं जहाँ की पृथ्वी उर्वरा और जलवायु न अत्यन्त उष्ण नातिशीतल है वहाँ के लोग स्वभाव के मृदु दयावन्त सीधे सहनशील उदार प्रकृति कृतज्ञ किंचित आलसी और प्रायः भोगलिप्सु होते हैं । अत्यन्त उष्ण देश के निवासी जहाँ की पृथ्वी सूर्य की खरतर किरणों से झुलसी हुई रहने से कम उपजाऊ है और जहाँ का जलवायु भी स्वच्छ नहीं है वहाँ के लोग बुद्धि से कुठित मरभुखे दगाबाज कृतघ्न निष्ठुर निर्दयी खोटे अविश्वासी और प्रभुत्वशक्ति विहीन होते हैं । इत्यादि, प्राकृतिक नियम के अनुसार हिन्दुस्तान की स्थिति उसी जलवायु की है जो न अत्यन्त उष्ण है न बहुत ठण्डा अधिकांश जिसका समभूभाग और अत्यन्त उर्वरा पृथ्वी का है । बहुत ही थोड़े परिश्रम में भोजनाच्छादन यथेष्ट मन माफिक और सुख से होता आया । यही कारण हुआ कि यहाँ के लोग कम मेहनती और व्यवसायशील न हुए । जिनमें व्यवसाय की कमी है वे आलसी होंगे जो आलसी है वे झुझट में पड़ना कभी पसन्द न करेंगे । समूची की जगह आधी खाकर रह जाना उन्हें भावेगा इसीसे सहनशील और सतोषी हुए जो हर तरह पर खुश खुरम सब भाँति पूर्ण किसी भोग पदार्थ के लिए लालाईत नहीं है वे अवश्य ही उदार प्रकृति सीधे स्वभाव और अकुटिल भाव के होंगे ।

आस-पास के रहने वाले विदेशी यवन उनके इस परमोत्कृष्ट सात्त्विक गुण का लाभ उठाय पुनः पुनः इनको आक्रमण करते हुए इनका सर्वस्व निगल बैठे और इन्हें अपने अधीन कर लिया पर ये अपनी स्वाभाविक सहनशीलता से पदाघात सह कर भी क्रोध के वश न हुए जो कुछ बचा और जिस तरह पर उन्होंने इन्हें रक्खा उसी में सन्तुष्ट रहे । यवनों का अधिक सन्निकट और सम्पर्क से अपने बहुत से उत्कृष्ट सात्त्विक गुण खो बैठे । उन यवनों की भोगलिप्सा इनमें बहुत अधिक आ

गई बल्कि यों कहिए जितनी पहले थी उसकी दो चन्द हो गई। पीछे ये यवन भी यहाँ के जलवायु के वशीभूत हो बहुत बातों में उन्हीं हिन्दुओं के सहकारी हो गए। ये हिन्दू यद्यपि अनेक रीत-वर्तव्य चाल-चलन निशिस्त बरखास्त में अर्द्ध यवन हो गये सही पर अपनी जाति का स्वाभाविक भोलापन समूची की जगह आधी सतोष स्वामिभक्ति कृतज्ञता आदि गुण न छोड़ा। थोड़े ही उपकार में निहाल हो जाना और पहले किये हुए अपकार को बिलकुल भूल जाना यह गुण इसी कौम में है।

प्रत्येक देश की कौम के इतिहासों को पढ़ इनसे मिलाइये तो इसकी टटोल भरपूर आपको हो जायगी और हमारा कहना कहाँ तक सच है इसका अंदाजा आपको हो जायगा। थोड़े उपकार को भी बहुत कर मानने वाले इस जगतीतल में दूसरे नहीं हैं। अकबर ऐसे कई एक मुसलमान बादशाहों ने इनमें इस गुण को पहचान लिया था और तदनुसार इनके साथ बर्ते भी जिसका फल यह हुआ कि ये प्राणपन के साथ इनकी फरमावरदारी से नहीं चूके। हमारे सामयिक शासनकर्त्ता हर तरह पर बुद्धिमान होकर भी न जाने क्या कारण है कि सौ वर्ष से ऊपर इनको यहाँ राज्य करत वीत गया सब भाँति इनकी परख भी न जाने कै बार कर चुके और पूरी तरह इन्हें राजभक्त पाया तो भी इन्हें न पहचान सके। सच है स्वार्थ का लोभ ऐसा ही प्रबल होता है जिसकी प्रेरणा से मनुष्य स्वार्थान्ध हो उचित को अनुचित, अनुचित को उचित मानने लगता है। अस्तु, ये अपने काम में त्रुटि करते हैं कर्म पर हम अपने कर्त्तव्य से न चूकेगे। राजा को माक्षात् ईश्वर का अर्द्ध मानना हमारे यहाँ के धर्मग्रन्थों में लिख दिया गया है तब साधारण रीति पर यह हमारा एक धर्म हो गया। आचार-विचार आदि धर्म के अनेक अंग उपाग के समान मान है। धर्मभीरु होना भी इस जाति का एक स्वाभाविक गुण है। सब जाय पर परमार्थ और परलोक न विगडने पावे उसी बुनियाद पर अत्याचारी से अत्याचारी मुसलमान बादशाहों की इताग्रत करते ही आये तब उनके मुकाबिले तो इनका बहुत दूर तक धर्म-राज्य माना गया है। उसके साथ भी हमको वही भाव रखना ही पड़ेगा।

अब वह स्वार्थ दृष्टि अतिम छोर को पहुँच गई है इसी से हमारा क्लेश भी दिन-दिन अधिक होता जाता है । भविष्य जैसा हिन्दुस्तान के रहने वालों का धुँधला देख पड़ता है वैसा किसी देश के रहनेवालों को न सुधारा और आगे बढ़ने का इरादा न किया तब और अब कब करेंगे । ठीक है—

“प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रह. किं करिष्यति”

जिसका जो स्वभाव है नहीं छूटना कोई कितना ही उसके रोकने का उपाय करे कृतकार्यता नहीं होती । अथवा—

“विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपातः शतमुखः”

जिनको अपने भले बुरे का ज्ञान नहीं है वे बराबर नीचे ही को गिरते जाते हैं । आगे अब इस निर्वुद्धि अन्धी समाज का और क्या होने वाला है भगवान जाने हमारा अनुमान सर्वथा लँगड़ा है जिसकी गति वहाँ तक हुई नहीं ।

दिसम्बर १८९९

१३—मानवीसम्पत्ति

संसार में जितनी सम्पत्ति है उन सबों के विधाता और भोक्ता मनुष्य ही है इसलिये मानवीसम्पत्ति को हम सब सम्पत्तियों में श्रेष्ठ कहेंगे । जब और जहाँ किसी प्रकार की वृद्धि अथवा हानि हुई है उन दोनों के कारण मनुष्य ही हुये हैं । इस समय में भी जा बड़ी-बड़ी तरक्कियाँ हो रही हैं अथवा दुर्गुण और बड़ी-बड़ी बुराइयों की अधिकाई से अवनति और तरह तरह की विपत्ति बढ़ती जाती है उनके हेतु भी ये मनुष्य ही हैं । भविष्यकाल में भी जहाँ कहीं बिगड़ी दशा का सुधार और सुधरी दशा का बिगाड़ उत्पन्न होगा वह भी इसी मानवीसृष्टि की भावी उत्तमता वा अधन्यता के कारण होगा । वास्तव में यह कैसा उत्तम रत्न है कि जहाँ उपजता है न केवल उसी स्थान को किन्तु आस-पास और समीपवर्ती प्रान्तों को भी चमका देता है । इस विलक्षण मनुष्यरत्न की उत्पत्ति के प्रकरण में किसी खानि वा देश काल वा जल पवन का भी कुछ नियम नहीं है चाहे जहाँ कहीं यह रत्न पैदा हो जाय । कभी-कभी क्रमशः और कभी-कभी विपरीत क्रम से भी इसका उदय होता है और उदय होते ही मलगाचल के समान समस्त प्रान्तवर्ती देश को सुगन्धि पूरित और चन्द्रमा के समान यावत् आकाशचारी ग्रह और छोटे बड़े ताराओं को अपनी प्रभा से दबा कर उन पर अपनी प्रभुशक्ति स्थापन करने में विलब या किसी तरह का अटकाव नहीं रहता ।

इसके विरुद्ध यह मानवी सृष्टि ऐसी अध्रम, घृणिन और सर्वनाश-कारिणी भी होती है कि जहाँ कहीं यह व्युत्क्रम से उत्पन्न होती है तो न केवल अपनी जन्मभूमि ही को दूषित और दुर्दलित करती है किन्तु अड़ोस पड़ोस के देश या जाति में भी अपने कलुषित भाव का विकार पहुँचाती है । इसके दृष्टान्त प्रत्येक देश के पुरातन तथा आधुनिक इतिहासों में बहुतायत से पाये जाते हैं । हमारे यहाँ के ग्रन्थकार सती-

१४---सारल्यं सत्तमो मार्गः

(Honesty is the best Policy)

सारल्य वा साधुता दोनो एक ही बात है। सासारिक सभी कार्यों में सफलता लाभ के लिये जिन सदुपायो का अवलम्बन किया जाता है वही साधुता वा सारल्य है। आजकल प्रचलित भाषा में इसे ईमानदारी कहते हैं। यही साधुता सभी साध्य साधनों के लिये श्रेयस्कर सुमार्ग है। सारार्थ यह कि कोई कैसा ही काम क्यों न हो उसमें कपट, छल-छिद्र छोड़ कर सत्य सत्य समुचित व्यवहार करना सर्वोत्तम है।

सभी लोग चाहते हैं कि हम कृतकार्य हो—हमारी अभीष्टसिद्धि हो पर उनमें बहुत कम सफल मनोरथ होते हैं। क्यों ? इसका एक ही उत्तर है कि वे अपने अभीष्ट साधन की कार्यसिद्धि में सत्पथ का अवलम्बन नहीं करते। वे थोड़े से प्रलोभन में पड़ कर अपना प्रकृत पथ छोड़ देते हैं। इसका फल यह होता है कि वे अपने कार्य में हर प्रकार की हानि तो उठाते ही हैं साथ ही साथ लोक में अपयश, कलक और दुर्नाम फैलाते हैं। इस प्रकार के कार्य से चुपचाप बैठे रहना ही अच्छा हो सकता है। कभी कभी असाधुता में भी अपने कार्य में सिद्धि की सम्भावना है पर उसका परिणाम बहुत बुरा होता है। क्योंकि कार्य में गुप्त रूप से छिपा हुआ कारण यथा समय प्रकट होकर सभी पोल खोल देता है। अतएव शीघ्र अधिक लाभ के लिये असन्मार्ग का साधन करना अत्यन्त अनुचित है।

खूब सोच विचार कर, आगे पीछे सुन कर और फलाफल की विवेचना कर यही उचित जान पड़ता है कि साधुता का पथ ही प्रशस्त और निर्विघ्न है। सत्पथ का पथिक बन परिश्रम से अर्थोपार्जन करना और प्रतिष्ठा पाना शास्त्रानुमोदित है। यद्यपि इस प्रकार कार्य करने में कष्ट है और छल-कपट का जाल बिछा कर सुख से धन कमाना सुख-

कर है तथापि सत्य से विचलित हो कर संसार की मर्यादा लाँघना प्रशस्त नीतिपथ का अतिक्रम करना उचित नहीं है। संसार में जितने उत्तमशील पुरुष हुए हैं उनके सहायक धर्म बुद्धि और परिश्रम ही हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं जो पाप-बुद्धि से पैसे कमाकर सौभाग्यशाली बन गये हैं पर उनकी सम्पत्ति विद्युद्विलास के समान क्षणस्थायी है—चिरस्थायी नहीं। यूरोप की सारी जातियाँ, अमेरिका, जापान आदि अभ्युदयशाली देश केवल साधुता से ही अपरिशीम परिश्रम के द्वारा नाना कलाकौशल और व्यवसाय-बुद्धि की उद्भावना कर सम्पत्तिशालियों में अग्रगण्य हो रहे हैं।

क्या पढ़ना-लिखना, क्या नौकरी करना, क्या कोई व्यवसाय करना और क्या कोई दान-पुन्य करना—सभी कार्यों में साधुता की आवश्यकता है। इसके बिना कोई काम शान्तिपूर्वक चलने का नहीं और न कोई लाभ होने का। पढ़ने-लिखने में मास्टर को धोखा देना, उनसे छिपे छिपे छूछपाछ कर प्रश्नों का उत्तर देना, कापी नकल करना, नौकरी में मालिक के मन से काम न करना, उसे बहलावा देना, घूम लेना, अपने लाभ के लिये मालिक को हानि पहुँचाना व्यवसाय में झूठमूठ की मीठी मीठी बातें बनाना, शिष्टाचार दिखला साथी को—गाहक का पट्टी पढाकर अपना मतलब गाँठना, पैसा ठगना और दान पुन्य में दिखलौआ कार्य करना, थोड़ा देना और बहुत कहना आदि जितने प्रपञ्च के कार्य हैं सभी जीवनसुख के बाधक और हानिकारक हैं। ऐसे ही अन्यान्य कार्य हैं जिनके बाहरी रंग-ढग सभी बेकार हैं। इनका परिणाम यह होता है कि आपस का विश्वास उठ जाता है; साख जाती रहती है, और ऐसे ही परस्पर घृणा, अरुचि और मनोमालिन्य उपज जाता है। पर इन्हीं बातों में साधुता का व्यवहार किया जाय तो थोड़े ही दिनों में विश्वास उत्पन्न हो जाता है, सहानु-भूति बढ़ जाती है और क्रमशः उसकी प्रतिपत्ति का शीघ्र ही प्रसार हो जाता है। शुद्ध चरित, साधु व्यवहार और सदाचार से सभी की उन्नति होती है।

असाधु व्यक्तियों का सा अशान्तिमय जीवन और किसी का नहीं है। क्योंकि हरेक काम में पद पद पर उसे भय बना रहता है। वह हमेशा इस बात से शङ्कित रहा करता है कि प्रब मेरी पोल खुली तब खुली। वह बाहर भीतर से सब प्रकार सुखी क्यों न रहे पर उसके हृदय में उल्लास नहीं, प्रसन्नता नहीं, और शान्ति नहीं। उसके मुँह पर सदा कालिमामिश्रित एक विषादमय छाया बनी रहती है। वह न मालूम निरन्तर मन में क्या-क्या सोचता रहता है। बहुत सावधान रहने पर भी जब उसकी दुरभिसन्धि खुल पड़ती है तब वह जनसमाज में मुँह दिखलाने के लायक ही नहीं रहता बल्कि लाञ्छना-सहित उसे राजदण्ड भी भोगना पड़ता है। पर साधुजीवन इससे एकदम विपरीत है। साधु व्यक्ति सत्पथावलम्बी होकर अपने श्रम से जो कुछ सामान्य उपार्जन करता है उसीसे भोपड़ी में रहते हुए भी जिस उल्लास और आनन्द से तथा जिस शान्ति और निश्चिन्तता से दिन बिताता है उसके नाममात्र सुख को स्वप्न में भी असत्पथगामी व्यक्ति राजप्रासाद में राजोपभोग भोगते हुए भी नहीं पाता। साधु व्यक्ति के मुख प्रफुल्ल, चित्त उद्वेगशून्य और कार्य निश्चल होते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिये ससार कर्मक्षेत्र है और उसमें सत्पथावलम्बी होकर परिश्रम करना ही निज कार्य है।

लोग क्यों असत्पथ का अवलम्बन करते हैं ? इसके कारण तीन हैं—आलस्य, श्रमविमुखता और लोभ। सभी चाहते हैं कि हम धनी हो, सुखी हों, और यशस्वी हो, पर वे परिश्रम करना नहीं चाहते—आलस्य नहीं छोड़ते। इस दशा में उनकी मनकामना पूरी हो तो कैसे ? इसके लिये वे चोरी, ठगी और बेईमानी करने पर उतारू होते हैं। चोर, चुहाड़, धोखेबाज, घूस-खोर वगैरह की दुर्दशा देख कहना नहीं होगा कि इसका परिणाम बुरा होता है। इससे मनुष्य का कर्त्तव्य है कि या तो लोभ छोड़ दे या लोभी बने तो हड़तोड़ परिश्रम करे। फिर उसे असाधुता के लिये बाध्य होना नहीं पड़ेगा। इसमें सन्देह नहीं कि सत्पथगामी होने में बहुत कुछ कष्ट भेलना पड़ता है और शीघ्र मनोरथ की सिद्धि नहीं

होती, तथापि महाराज हरिश्चन्द्र, नर-देव श्रीरामचन्द्र और धर्मप्राण युधिष्ठिर आदि महापुरुषों को सत्पथगामिता और उसमें सुफल फलते देख कभी अधीर न होना चाहिये। क्या राजनीति, क्या समाजनीति और क्या वाणिज्यनीति सभी नीतियों की सारनीति साधुता है। ससार में कृतकार्य होने के लिये साधुता ही एकमात्र सत्पथ है। इससे कभी किसी को विचलित नहीं होना चाहिये।

अवगुन ही को गहत हैं, गुन न गहै खल लोक ।

पियै रुधिर पै ना पियै लगी पयोधर जोक ॥

आजकल निन्दको का जखेड़ा बड़ा हुआ है जिन्होंने घाट-बाट शिवाले या मन्दिरों में जमा हो निन्दा करने का प्रण कर लिया है, फिर भी हम सब लोगों की भलाई ही चाहते हैं क्योंकि हमारा काम सदा सबकी भलाई चाहने का है और हम तो इस सिद्धान्त पर आरुढ़ हैं “कोटिन योद्धा क्या करे जो सहाय रघुवीर” ईश्वर जो अन्तःकरण का साक्षी है जानता है कि हम क्या कर रहे हैं और क्या चाहते हैं और हमारे निन्दक महा-शयों के कुटिल चित्तवृत्ति का साक्षी भी वही सर्वान्तर्यामी है सिवा इसके यह भी सिद्धान्त है ‘यतो धर्मस्ततो जयः’ जिस सर्वजन हितैषी अच्छे इरादे से मशोधन रूप पावनधर्म के अनुष्ठान में हम लोग प्रवृत्त हैं उस विमल धर्म के बल से खलप्रकृति निन्दको की एक नहीं चलती जिस जिस बात के लिये सिर उठाते हैं भरे मुँह गिरते ही जाते हैं। मसल है ‘जो टेढ़ई जीते सग्राम क्यों खरची तुरकी का दाम’ किसी बुद्धिमान् समझदार की समझ का निचोड़ है—

‘सर्वे यत्र विनेतार सर्वे पण्डितमानिनः ।

सर्वे स्वोत्कर्षमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति ॥’

जहाँ सब अपने अपने को अगुआ बनने हैं, सभी अपने को पण्डिताई और बुद्धिमानी में अग्रगण्य माने बैठे हैं और सभी अपना अपना उत्कर्ष चाहते हैं अर्थात् हमारी ही बात सब पर बाला रहै और सब हम से

दबै जहाँ ऐसे ऐसे बलन्द दिमाग वाले भरे है वह समुदाय कै दिन चल सकता है ? हम अब भी समझाते है सब कण्मल दूर बहाय मन की मैल साफ़ कर हमारे समान सरल और सीधे जी के बनो हमे अपना शिक्षा-गुरु मानो और जिस शुद्ध चित्त से हम तुम्हारी भलाई मे प्रवृत्त हुए थे उसे अब भी सोचो । सबेरे का भूला साँझ को आवै तो उसे भूला नहीं कहते । बहुत भटक चुके अब भी हमारा कहना अपना हित समझ ग्रहण कीजिये; और अंत मे तुम्हे ग्रहण करना ही पड़ेगा क्योंकि हमने भी यह निश्चय कर लिया है ।

‘देह वा पातये कार्य वा साधये’

आप लोगो ने कुछ अनुपकार हमारे लिए करना ठानी हो कभी न चूकिए हम आपका सब प्रहार सहने को मुस्तैद बैठे है; पर तुम्हे बिना राह लगाए न हटैगे पर न हटैगे; क्या करो दो एक लमडो के बहकाने मे लगे हो जिससे तुम पर अन्धकार छाया हुआ है और न उनके जीते जी यह तामसी निमिर कभी दूर होने वाला है मसल है ‘हमने तुम्हारे लिये बाँसुरी बजाया तुम न नाचे’ हम तो हित की बात सुझावे और तुम्हें बुरा लग तो लाचारी है । दैव ही हम तुम दोनो पर कुछ प्रतिकूल है क्या किया जाय ईश्वरेच्छा ।

१५-दिल और दिमाग

दिल और दिमाग का कुछ ऐसा साथ है कि आदमी में पूरी आदमीयत और उसके सब गुण तभी आते हैं जब इन दोनों में आपस का मेल हो। अगर इनसाज का दिमाग होता और दिल न होता तो निस्सन्देह बिना हाड माँस का शरीर ठठरो सा रह यह कभी शोभा न पाता। उपकार, दयालुता, कोमलता, शीत, सकोच, मुलाहिजा इत्यादि गुण-पुञ्ज जिनमें मनुष्य का जन्म सफल है कहीं नाममात्र को भी न रह जाते। पत्थर में कलत्रे वाले वेदिल निटुर की उपमा उस निर्जीव प्रतिमा के साथ दी जा सकती है जिसके एक एक अङ्ग में सजावट और सोन्दर्य भर दिया गया है पर एक जोवनी शक्ति चेतना के न रहने में सब विफल है। और भी जिस मनुष्य में दिमाग “इन्टेलैक्ट” की कमो है और दिल “फीलिंग” की अधिकाई है उस कार्य अकार्य विवेकशून्य में घूरे काम बन पड़ने की अधिक सम्भावना है इसलिए दोनों जब अपने पूरी ताकत के साथ मनुष्य के शरीर में काम करते रहने हैं तब यह मनुष्यता की पूर्ण शाना के साथ दमकता है। सभार में बहुत से ऐसे फिनायाहर और दार्शनिक हुए हैं जिनका मिद्धान्त है कि दिमाग की ताकत का हम जहाँ तक पैरो कर सकें उतना ही जल्दी और अधिक सुगमता के साथ उस मोक्ष और निर्वाण पद के अधिकारी हो सकेंगे। “फीलिंग” अर्थात् इन्द्रियार्थक ज्ञान को दबाना और दिल अर्थात् मन को मार डालना ही मुक्ति और सिद्ध अवस्था है। जैसे ग्रीस देश के इस्टाइक्ल अथवा हिन्दुस्तान के रूखे वेदान्ती जो हिमाकत में आप अपने को स्थिरधी मुनि मानते हैं।

गीता में इस प्रकार की दशा का नाम ब्राह्मी स्थिति है। ऐसों ने दिल को तो बिल्कुल मार ही डाला तब प्रेम दया सहानुभूति दूसरे के

दुःख से दुखी और सुख में सुखी इत्यादि जितने दिल वाले काम हैं उन्हें अवकाश मिलने का मौका ही न रहा। कट्टर ब्रह्मसात् ज्ञानी बड़ी है कि देखते देखते एक दो चार मनुष्य नहीं बरन् सपूर्ण संसार का ससार चाहे नाश हो जाय पर वह जरा भी न हीलै डोलै—

“कल्पान्ता वायवो वान्तु यान्तु चैमत्वमण्वा ।
तपन्तु द्वादशादित्या न मे नाशो न मे क्षति ॥”

यद्यपि ऐसे दृढ़ और स्थितप्रज्ञ इन ज्ञानियों का केवल खयाली पोलाव मात्र है, ऐसे लोग न कभी हुए हैं न आगे को शायद कभी होंगे किन्तु दिल से सरोकार रखने वाले प्रेमादिक बन्धनों को काट डालने के लिए ऐसी की यह तालीम काफी हुई। हाँ, यदि मन से सरोकार रखने वाली बातें दया से पिघल उठना परोपकार और भलाई में सदा दत्तचित्त रह दुःख में ऊबना नहीं और सुख में फूल उठना नहीं इत्यादि स्थितप्रज्ञता कही जाय तो कोई उसे कभी बुरा न कहेंगा—

“य सर्वानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥”

एक दूसरे प्रकार के दार्शनिक और हैं जो ‘फीलिग्स’ बोधात्मक ज्ञान के प्रकाश ही को निश्चेय या मुक्ति का साधन मानते हैं उनका मत है हम ज्यो-ज्यो इस बोधात्मक ज्ञान को अच्छी वामना की ओर लगाते जायेंगे त्यों-त्यों हमारी बुरी और दुष्ट वासनायें आप से आप हमसे अलग होती रहेगी। जैसा सती पतिव्रता को नजर के सामने आते ही कुलटा व्यभिचारिणी अपने कुचरित्रों को स्मरण कर मुँह छिपाती है। भक्ति प्रेम और श्रद्धा के उद्गार ही को ये मुक्ति का महामाधन समझते हैं। मनुष्य का अपने मनुष्यता के काम में पूर्ण होना ही मुक्ति है। हमारे मन में भी यही आना है कि बिना भक्ति का शुष्क ज्ञान सिवा बुराई के कभी भलाई के लिए न होगा। भक्ति जिसका अकुर दिल में फूटता है और दिमाग से इसका विशेष लगाव न रहने से अज्ञान ही अधिकतर

इसका पोषक है इसलिए जैसे सीधे सरल और चित्त के भोले भक्त जन होंगे वैसे ही कट्टर जानी नहीं। दर्शन और फिनासोकी का अनुशीलन करते करते जिनका मस्तिष्क यहाँ तक परिष्कृत और बुद्धि इतनी पैनी हो जाती है कि उनकी बहस और तकरीर के मुकाबिले कोई बात कभी उनके अविश्वासी चित्त में स्थान पा ही नहीं सकती। तब परमार्थ मुक्ति तथा ईश्वर के मिलने का एकमात्र द्वार चित्त की सिधार्थ जो भोली भक्ति में अत्यंत सहज थी कोसो उनसे दूर हट जाती है। अन्त को ये दार्शनिक तर्क-वितर्क करने करते कट्टर दहरिये और नास्तिक हो इस जगम जगत को अपना ही सा कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं।

समारा का जितना अनुपकार इन दिमागी ताकत का घमड़ रखते पत्थर समान कलेजे वालों में हुआ है उतना इनमें नहीं जिनके कोमल सरल चित्त में अभिमान या घमड़ को कभी अवसर ही नहीं मिलता वरन् जो मोम की भाँत जग में पिघल उठने है। दिमाग दस आदमियों का भी एक होकर साहम को कभी नहीं बढ़ा सकता, दिल दो आदमी का भी एक हो पहाड़ को खोद डाल सकता है

“दो दिल एक शब्द में कनद कोहरा”

हमारे वगदेश में दिमाग की ताकत अपने पूरे उत्कर्ष को पहुँची हुई है पर दिली ताकत उनमें न रहने से समारा भर में भीरु और डगपोक प्रसिद्ध है सिवा काँव काँव करने के इनमें कुछ हो ही नहीं सकता। अथवा यो कहिये कि हिन्दुस्तान दिमागी ताकत में कभी किसी से पीछे हटा नहीं रहा न अब इसी गिरी दशा में भी मुकाबिले में किसी देश या जाति से कम है। पर न जानिये कौन सा ऐसा दैव का दुर्विपाक इस पर सवार है कि दिली ताकत इसकी बढ़ती ही नहीं। सर्वनाशकारी कुरुक्षेत्र की लड़ाई से जो इसका दिल टूटा सो फिर आज तक न जुड़ा। इसकी पस्त हिम्मत बढ़ती ही गई और एका या एक दिली ताकत की

आनन्दमयी मूर्ति का दर्शन उसे फिर आज तक न मिला न उसके मिलने की कोई सभावना पाई जाती है। अक्सर बोल चाल में दिल और दिमाग का एक मुहाविरा हो गया है जिस किसी की तारीफ करना हुआ तो लोग कहते हैं ये बड़े दिल दिमाग के आदमी है पर यह सिर्फ कहने की बात है। बहुधा पाया जाता है जहाँ दिल है वहाँ दिमाग नहीं। जहाँ दिमाग है वहाँ दिल को कभी मिलते देखते ही नहीं। यद्यपि 'ब्रेनवर्क' मस्तिष्क का काम और शारीरिक कामों की अपेक्षा योग्यता प्रकट करता है किन्तु कसौटी के समय परख केवल दिल ही की जाती है किसी के लेख में इसकी पूरी परीक्षा हो सकती है। लेख यद्यपि निरे दिमाग का काम है पर पढ़ने वाला जल्द और सहज में जान सकता है कि इस लेख लिखनेवाले का दिल किस किस्म का है। उसकी तबियत की भुकावट किस ओर को अधिक मुड़ती है। रसीली तबियत वाले जो शृङ्गार रस में पगे हैं उनकी लेखनी से वीर रस कभी निकले हीगा नहीं ऐसी के लिए वीररस प्रधान लेख पहले तो अति दुरूह है। वीर रस यदि कुछ लिखा भी तो वह वैसा मनोरंजक न होगा जैसा शृङ्गार उनकी लेखनी से वनैगा मतिराम और भूपण इसके उदाहरण हैं।

तात्पर्य यह कि दिल आदमी के दिमाग का एक नमूना है जिससे इसके तबियत का सब रंग-रङ्ग हमें मालूम होता है। इसी दिल का दूसरा नाम मनोवृत्ति, रुचि, रसीलापन, रसिकता, स्वादु या जाड़का इत्यादि है। दिल और दिमाग दोनों की एकताई पूर्णता या उत्कृष्ट सीमा ससार भर में केवल एक ही व्यक्ति में अब तक पाई जाती गई जिसे भावुक अपनी भावना और रुचि के अनुसार जिस भाव से ग्रहण करे उसे अपने अनुकूल भावना की पूरी पुष्टता होती है और यह व्यक्ति वही है जिसे कोई चौरजारशिरोमण के नाम से पुकारता है, कोई यावत् दार्शनिक और फिलासोफरो के पुरखाओं के भी आदि पुरखा "योगीश्व-राय कृष्णाय गीतामृतदुहे" कह नमस्कार करता है। कोई बड़े-बड़े

कुटिल राजनीतिज्ञों के सिरताज सर्वथा पुन. उत्थान की सम्भावना शून्य
 हतक हिन्दुस्तान की मूल नाशक महाभारत की सरहग जंग का बानी
 मुवानो इन्हें मान अचरज के समुद्र में बूडता उतराता अचिन्त्यशक्ति
 महामहिम की अगार महिमा का पार नहीं पाता । अतएव दिल और
 दिमाग दोनों की पूरी ताकत से जो बात हो सकती है वह फुटफुट रहने
 से नहीं चाहे एक में हम कितनी ही तरक्की कर गुजरे हो दोनों का साथ
 बिना हुये कुछ हो ही गा नहीं ।

अक्टूबर १८९१

१६—बड़प्पन और अच्छापन

यह हमारा मतलब नहीं है कि ये दोनों गुण एक ही मनुष्य में नहीं हो सकते किन्तु इन दोनों के यदि अलग अलग गुण दिखाए जाय तो यह तात्पर्य सिद्ध होगा कि बड़प्पन विद्या, योग्यता, प्रतिष्ठा, धन आदि से मिलता है और अच्छापन या सुजनता केवल चित्त की कोमलता, स्वच्छता, समभाव, प्रीति और दया आदि से सम्बन्ध रखता है। यूनान और रोम देश के इतिहास पढ़िये तो यह बात स्पष्ट हो जाती है। सेल्यूकस ऐन्टीगोनस अट्रियाकस आदि सिकन्दर के नामी सेनापति, नीरो सिसिरो आदि रोम के सम्राट सब बड़े-बड़े लोग हुए हैं पर अच्छेपन की नेकी उनमें एक भी न थी, वरन् निठुराई लालच स्वार्थपरता आदि ऐगुणों के ये सब पुतले थे।

दोनों गुण जब एक ही में होंगे तो अच्छेपन से बड़प्पन का बढ़ जाना सहज होगा। इसके दो कारण हैं एक यह कि संसार की परिपाटी ही ऐसे निकल पड़ी है कि बाप लड़कपन से अपने लडके को बड़ी-बड़ी विद्या, बड़े-बड़े हुनर और फन सिखाता है, सब तरह की डाँट रखता है, स्कूल या पाठशालों में भेज बहुत सा धन व्यय करता है, सो सब इसीलिये कि हमारा लडका बड़प्पन सम्बन्धी बातों में निपुण हो धन, प्रतिष्ठा, योग्यता आदि में बड़े पदवी पाने लायक हो। दूसरा कारण यह है कि सुजनता या अच्छापन लोहे के चने और महावज्र समान कठिन है अत्यन्त दुरुह से दुरुह शास्त्र या विद्या सब परिश्रम साध्य हैं। जिसका एक ढर्रा सा बँध गया है, कुछ दिनों तक इसी ढर्रे पर बराबर मेहनत करते रहिए उस कठिन से कठिन विषय के आप पारंगत और पूर्ण पंडित हो जायेंगे, आपके इल्म और लियाकत का कोई दूसरा सानी न निकलेगा। पर यह नेकनामी ऐसा विषम असि धारा व्रत है कि तनिक फिसले कि गये। जो मनुष्य एक बात में भी अच्छेपन से फिसल कर बदनाम हुआ वह बचीबचाई भी अपनी नेकनामी

को नहीं रोक सकता। एक दोष या बुरी आदत जो किसी कारण से अपने में आ गई है उसे निकाल डालना और उसके स्थान में दूसरे गुण को जगह देना कितना कठिन काम है। बराबर अनुशीलन करते रहो कठिन से कठिन शास्त्र हल हो पानी हो जाते हैं। पर बुराई को छोड़ कर भलाई का अनुशीलन एक नहीं सौ जन्म तक करते रहो कृत कार्य न होंगे। पहले चाहे ऐसा रहा भी हो पर इस सभ्यता के जमाने में तो चित्त की स्वच्छता सफाई सिधाई आदि को लोग मूर्खता का एक पर्याय मानते हैं। ऐसी को बौद्ध, गावदी, सिपिलटन, इडियट आदि का खिताब देते हैं। फिर क्यों उधर तबियत रुजू ही, धन इसमें, यश इसमें इज्जन इसमें, नाम इसमें, कौन सी ऐसी बात है जो बड़प्पन में नहीं मिलती। पर सच पूछिए तो ससार का जैसा उपकार और हित आप स्वच्छता ईमानदारी और दया आदि के द्वारा कर सकते हैं वैसा बड़े से बड़े हो कर भी नहीं कर सकते। गोल्डस्मिथ का 'डिजरटेड विलेज' या पं० श्रीधर पाठक कृत उसी का अनुवाद 'ऊजड़ गाँव' पढ़िये तो हमारे इस लेख की सजावट आपके मन में भरपूर आ जायगी। इसका सद्यः फल देखा जाता है कि भलाई करने वाले और जिनके साथ भलाई की जाती है दोनों एक अनिर्वचनीय आनन्द और सन्तोष से तत्काल पूर्ण हो जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं बड़प्पन का ढिंढोरा दूर-दूर तक पिट जाता है। ऐसी का नाम कान में आते ही एक ऐसा भाव चित्त में आ जाता है जिसे चाहे कौतुक कहिए, चाहे भय और गौरव का संगम कहिये, चाहे अपने में भी वैसा ही एक लोकोत्तर चमत्कार आने के लिये बड़प्पन के अनुहार का उसे एक नमूना कहिए। बड़ी-बड़ी स्पीचे लम्बे-लम्बे लेख, ऊँचे से ऊँचा पद, असीम धन और वैभव से आदमी के बड़प्पन में मानों सान सी धर दी जाती है। इसमें सन्देह नहीं बड़प्पन अपने लिये महा उपकारी है पर अपने कृपापात्र कुटुम्ब, मित्र और बन्धु वर्ग को बड़े से बड़ा लाभ पहुँचाना और अपने लिये आत्म-परितोष केवल अच्छेपन के ही गुणों

में हैं। सच्चा आत्मगौरव हम नहीं समझते। बड़ों को भी उनके बड़े कामों से क्यों कर मिल सकता है। इसे एकान्त में उनसे उस समय पूछिये जब उनके बड़प्पन की तारीफ का तूफान पहले बार बड़े जोर-शोर के साथ उठ कर हमेशा के लिये शान्त हो गया हो तो वे भी यही कहेंगे कि अपने दिल में हम अपने वास्ते जगह अच्छे कामों ही के लिये दे सकते हैं न कि बाहरी धूमधाम के लिये।

जब उस दरजे की स्वच्छता चित्त की सफाई और पवित्रता अपने में आ गई कि आत्मगौरव की पदवी पाने का अधिकारी हमने अपने को बना लिया तो वह खजाना हाथ लगता है जिसे आप जितना ही खर्च करो कभी न घटैगा। दूसरे यह कि लोगों की बाहरी तारीफ का ठिकाना क्या? बहुधा देखा गया है जो लोग बड़ी तारीफ करते थे वे ही पीछे से बड़े निन्दक और जानी दुश्मन बन गये हैं। यहाँ पर यह भी हम कहेंगे कि मानी लोग जिन्हें अपने आत्मगौरव का मान है किसी अपने सच्चे गुणों के अपरिचित मनुष्य से अपमान में इतनी हेठी नहीं समझते जितनी नाकदरो की कदरदानी और इज्जत में।

परोवजानाति पदज्ञता जडस्तद्वन्नतानां न निहन्ति धीरताम् ।

समानवीर्यान्वयपौरुषेषु यः करोत्यधिक्षेपमसौ तिरस्क्रिया ॥

इसी स्तम्भ में हम यह भी कहना चाहते हैं कि हमे बहुधा इस बात का तरद्दुद आ पड़ता है कि अङ्गरेजी के “मारल” आदि शब्दों का पर्याय हम अपनी भाषा में कहाँ से लावें किन्तु यह भी उसी के साथ कहेंगे कि वह तरद्दुद खाली शब्दों ही मात्र के ढँढने तक में है। क्योंकि यद्यपि जहाँ संस्कृत के और बहुत से शास्त्र विविध विज्ञाग और कला सब हमारे धर्म के साथ गड़बड़ कर दी गई है वहाँ पर “मारल” और “रिलिजन” धर्म शिक्षा अलग अलग रक्खा ही नहीं। जो लोग केबल शब्द पर नहीं जाते वरन् इस बात की परख करने वाले हैं और हिन्दुस्तान की पहली दशा से जानकार हैं उनको इसके मानने से कुछ तरद्दुद न होगा कि जैसा उत्कर्ष मारल शिक्षा का हमारे यहाँ रहा

और पहले जैसी इसकी चाह और मान हम लोगो में रही वैसी और कहीं न थी। खेद है कि अब हमारे यहाँ के लोग सांसारिक वैभव प्रभुता ऊँचे पद आदि बड़प्पन की खोज में लग आभ्यन्तरिक सुधार व जिसका दूसरा नाम चारित्र्य या मारन शिक्षा है भूल ही गये जो किसी समय भारत की अभूतपूर्व वैभव तथा यहाँ की “नेशनलिटी” जातीयता की अग्रसर पताका थी। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक सर वाल्टर स्काट मरण-शय्या में पड़े हुए अपने उत्तराधिकारियों को बारम्बार चेताते गये “धर्मिष्ठ होने में और अपने चरित्र को शुद्ध रखने में तन मन से तत्पर रहो क्योंकि जब मेरे समान तुम भी एक दिन इस मरणशय्या पर सोने को आओगे उस समय तुम्हारा शुभ चरित्र और धर्माचरण ही तुम्हारा सहायक हो तुम्हें बचावेगा।”

हमारे ऋषि-मुनि इसके एक दृष्टान्त हो गये। वन्यवृत्ति जंगल के रहने वाले महर्षियों में कौन सी ऐसी बात थी जिससे वे महामाननीय और पुण्यश्लोक समझे गये? राम नाम के समान जिनका प्रातःस्मरण दिन भर के कल्याण का हेतु माना जाता है। केवल इतना ही नहीं कि इनका बड़प्पन इन दिनों के बड़े लोगों का-सा न था वरन् सर्वजनहितेच्छा और लोकोपकार का ऐसा बीज उनकी कोमल प्रकृति में विद्यमान था जिससे वे महानुभाव और अच्छे समझ गये और जिस “मोरालिटी” चरित्र शोधन शिक्षा का अंग्रेजी भाषा की अग्रगण्य लेखक-मण्डली बड़ा अभिमान रखती है और मानती है कि “मारलप्रोचिंग” केवल अंग्रेजी ही में गिरा है उसके ये विमल मन उदार चित्त ऋषिजन परमाचार्य थे जिनके लेख से यही बोध होता है कि ये लोग केवल हिन्दुस्तान ही नहीं वरन् विश्वभर के सार्वजनीन हित और चारित्र्य-शोधन का ठीका लै उतरे थे।

“अयं निजः परोवेतिगणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥”

इस तरह के सैंकड़ों हजारों चोखे से चोखे वाक्य जिनके एक एक पद में “मारल्स” टपका पड़ता है विलायत के किस साहब ने उन्हें आकर सिखाया था ! तब यह कहना कि ‘मोरालिटी’ सिर्फ अंग्रेजी तालीम के साथ गिरो है निरा बड़बोल और हिमाकत है और यह बोल ही प्रकट करता है कि कहीं तक उनके चरित्र-शोधन-शिक्षा की कमी है । भवतु:—

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचारन्

विवेकी ज्ञानवान् जानकार कर्म में लगा हुआ अज्ञो की बुद्धि में कुछ भ्रम न पैदा कर उन्ही अज्ञो के समान आप भी सब काम करता जाय ।

हम नहीं जानते कौन सा बड़ा उपकार इससे समझा गया कि जानकार बुद्धिमान किसी काम के बुरे परिणाम और उससे होनहार हानि का अनुमान कर भी आप उस काम को महाअज्ञ बना हुआ करता ही जाय और दूसरो से भी जो नितान्त अज्ञ है कराता रहे । जिसके छिपे माने यही हुये कि महाकपटी जाहिरदार बन लोकरंजना में प्रवृत्त रहो और विवेक बुद्धि तथा किसी विषय की जानकारी जो तुम्हें दी गई या बड़े परिश्रम से उसमें जानकारी या वाक-फीयत तुमने हासिल किया है सबको भाड में भोंक महामहोपाध्याय उलूक भट्ट के चेला बने रहो और प्रचलित ग्रन्धपरम्परा की तन मन से पैरवी करते जाओ । तरक्की या आगे को कदम बढ़ाना कैसा जहाँ या जिसमें जरा भी सुधार देखो उसे बिना धार में मिलाये स्थिर न हो ।

हिन्दुस्तान को विद्यमान कुदशा में धसीट लाने को जहाँ और बहुत सी बातें हैं वहाँ गीता के इस श्लोक की शिक्षा का असर भी सहकारी बना । हम नहीं समझते उस अधम बुद्धि ज्ञानवान से क्यों कर जब्त की जा सकती है कि बेअकिल अज्ञों के कामों को न टोक उन्हें अपनी बेअकिली के ढर्रे पर चला जाने दे । हम तो यही कहेंगे कि उस अज्ञ गँवार को टोकना कैसा उस बिन सींग पूँछ वाले को मार मार सीधा

करे और उतने पर भी वह मूर्ख न समझें तो संसार से उसका उच्छेद ही कर डाले । जगत में अपनी प्रतिष्ठा कायम रख मक्कारी से पामरों के ठगने को आधुनिक ब्रह्मज्ञानियों का यह भी एक हथकंडा है कि जान-बूझ कर भी अज्ञान बना रहें, प्रचलित कुसस्कार और कुरीतियों को जारी रहने दे, ज्यों-ज्यों मूर्खता का विस्तार होता रहेगा त्यों-त्यों अन्धों में काना राजा की भाँत उनका मान और बड़प्पन बढ़ता जायगा । दूसरा कारण इस श्लोक के गढ़न्त का यह भी हो सकता है कि प्रजा का मन जहाँ सुधार या संशोधन की ओर रुजू हुआ और अल्पज्ञों में भी समझदारी और विवेक समाया तहाँ निपट अज्ञान रूप हमारा ब्रह्मज्ञान या पड़िताई की कलाई खुल जायगी । फिर हम पड़े-पड़े भिनभिनाया करेगे कोई बात न पूछेगा ।

सच मानिये यह लोकेषणा या शीलपालन भी जिसको मूल में रख ऊपर का श्लोक लिखा गया ऐसी बुरी वस्तु है कि यह हमारे में हिम्मत या 'मारेल करेज' आने ही नहीं देती, सौ पचास में दो एक ऐसे हुये भी जिन्होंने लोकेषणा को लात मार बड़े साहस के साथ उचित कर्त्तव्य पर कमर बाँध सन्नद्ध हुये तो अल्पज्ञ अविवेकियों में नक्कू बनते हैं, अन्त में अपना साथी किसी को न पाय मन मार हतोत्साह हो बैठ रहते हैं, इत्यादि, सब दोष इसी में पैदा हुये हैं जो अकर्म को कर्म मान उसके करने में प्रवृत्त अज्ञों की बुद्धि में भेद नहीं पैदा किया जाता । इसलिये सर्वजनहितेच्छुक को चाहिये कि ऊपर के युक्तिशून्य वाक्य का कुछ भी संकोच न कर अपने कर्त्तव्य पर सन्नद्ध रहे ।

मई १८९१

१७--मन की दृढ़ता

अनेक मानसिक शक्तियों में दृढ़ता भी मन का एक उत्तम धर्म और मनुष्य के प्रशंसनीय गुणों में है। परन्तु इन मानसिक शक्तियों पर कुछ लेख लिखने या उनके विचार के सम्बन्ध में कुछ कथोपकथन करने के पहले यह प्रश्न उठता है कि इस कथोपकथन का उद्देश्य क्या है ? यदि यह माना जाय कि कोई न कोई मानसिक गुण लोगों में रहता ही है और जो लोग उन गुणों का पूरा आनन्द और लाभ उठा रहे हैं वे उठाये होंगे तब आप अपने इस लेख से और क्या अधिक लाभ पहुँचा सकते हैं। किन्तु इसके विपरीत यह मान लेने में कि जितने अच्छे गुण हैं उनके उद्दीपित करने का यही उत्तम उपाय है कि हम उन गुणों की यथोचित मीमांसा कर उनसे जो जो लाभ है उन्हें प्रकट कर दिखायें तब अलबत्ता लेख आदि की आवश्यकता हो सकती है। और कुछ नहीं तो इतना ही सही कि जो लोग उन गुणों के आधार हैं उनके साथ सहानुभूति प्रकाश करने से हम ऐसे लोगों को किञ्चित भी हर्ष पहुँचा सकेंगे तो हमारे लेख का कुछ कृत्य हुआ और इसीको ध्यान में रख हम आगे बढ़ते हैं।

गदहा पीट घोड़ा नहीं हो सकता। जिनमें किसी गुण का लेश नहीं है वे किसी तरह गुणशाली न हो सकेंगे लोगों के इस कहने को हम किसी किसी अंश में सत्य मानते हैं। अधिक विद्या की वृद्धि, स्थान स्थान में पुस्तकालय, क्लब और सभायें तथा अनेक उपकारी विषयों पर वक्तृता, समाचार-पत्र तथा विविध विद्या विषयक नित्य नये मासिक पत्रों का विशेष प्रचार यही सब उपाय हैं जिनमें आप लोगों को चाल-चलन में शुद्ध और सुचरित्र तथा मानसिक शक्तियों में आगे को बढ़े हुये कर सकते हैं। जब ये उपाय आपका प्रयोजन सिद्ध करने को किसी तरह कारगर नहीं हुए और आपके लोग भी वे ही हैं जिन पर इसका कुछ

असर नहीं पहुँच सका तो यह आशा ही करना व्यर्थ है कि यत्न और उपाय से जगत का वह लाभ होगा जो आज तक नहीं हुआ। गदहा पीट घोड़ा न हो सकेगा ऐसा मानने वालों के मत का खण्डन करना हमारा तात्पर्य नहीं है किन्तु इसके साथ ही हम यह भी मानते हैं कि बुद्धि का काम मनुष्य को सत्कर्म सम्बन्धी शिक्षा देने में यही मालूम होता है कि यद्यपि जो बात प्रबल संस्कार के कारण या किसी दूसरे-दूसरे हेतु से दैव ही ने किसी को नहीं दिया वह बात हम उसमें न उपजा सकें तो इतना तो करें कि सदुपदेश की परिणत दशा पर उसकी आँख तों खोल दें अर्थात् उसकी अपेक्षा दस भले लोग और दस बुरे लोगों के साथ उसके चालचलन का मिलान कर उसकी भली या बुरी चित्तवृत्ति का एक अन्दाजा तो उसे दें। उपरान्त उसे स्वयं अधिकार है चाहे वह अपनी दशा को आगे बढ़ावे अथवा अधःपतन से अपने को नीचे गिराता ही जाय क्योंकि अब यह कहने वाला तो कोई न रहेगा कि सुधारने के लिये किसी ने कुछ यत्न नहीं किया।

अब तो बुद्धि रूपी लैम्प के द्वारा उसने अपनी पहली निविड अन्धकार पूरित अथवा प्रकाश के संस्कार से संस्कृत पिछली दशाओं को देख लिया है तो इस बात का ज्ञान तो उसे अवश्य ही हो गया है कि हम कहाँ हैं और वे कौन और कैसे लोग हैं जिनसे हम कई दरजे अच्छे हैं अथवा वे कौन हैं जिनके समान हम चेष्टा करने से हो सकते हैं। और यह सब कोई छोटी बात नहीं है क्योंकि यदि हममें कोई पूछे कि प्रशंसा का मूल आप किसे कहेंगे तो हम यही उत्तर देंगे कि प्रशंसनीय केवल वे ही हैं जिन्होंने दीर्घ काल के अभ्यास और प्रयत्न से कुछ प्राप्त कर लिया है। यदि दैव की देन उस पर हुई और सहज ही में कोई अच्छी बात उसे प्राप्त हो गई तो निस्सन्देह यह तो अवश्य ही कहेंगे कि वह गुणी है पर यह न कहेंगे कि यह मनुष्य प्रशंसनीय है क्योंकि जैसा हमने अभी कहा प्रशंसनीय होने की योग्यता हम केवल असकृत चेष्टा और यत्नों ही पर निर्भर मानते हैं। ईश्वर की देन से स्वभावतः

प्राप्त गुणों की अपेक्षा चाहे असकृत चेष्टा और अभ्यास द्वारा प्राप्त गुणों में वैसा तीखापन न हो पर विचार की गंभीरता इस प्रकार के गुण में अवश्य विशेष होगी, और यह लाभ किससे कम है । इस बात के स्पष्ट करने को हम कवित्व शक्ति का उदाहरण देते हैं । कवियों को कविता करने की शक्ति ईश्वर प्रदत्त होती है सही परन्तु निरन्तर अभ्यास से जो कवित्व शक्ति सम्पादित की जाती है वह भी कुछ कम नहीं वरन् विचार की गम्भीरता ऐसे ही काव्यों में विशेष पाई जायगी क्योंकि पहले तरह के काव्य में कवि के हृदय से अपने आप जो निकलेगा वही रहेगा । पर दूसरे प्रकार के काव्य में खूब सोच समझ और गढ़-गढ़ के पद रक्खे जायेंगे । कहाँ तक तब वे पद सारगर्भित न होंगे । ममट भट्ट की कारिका से भी यह बात सम्यग् व्युत्पादित होती है:—

“शक्तिरिपुणतः लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।

काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥”

दण्डी का भी यही मत है:—

न विद्यते यद्यपि पूर्वं वासना गुणानुबन्धि प्रणिभानमद्भुतम् ।

श्रुतेन यत्नेन चवागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ॥

तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती श्रमादुपास्या खलुकीर्तिमीप्सुभिः ।

कृतेकवित्वेपि जनाः कृतश्रमाः विद्ग्धगोष्ठीषु विहर्तुमीशते ॥

कहने का प्रयोजन यह कि नाना प्रकार के गुणों में मनुष्यों की असमता में विधाता विषम भाव ही कारण है परन्तु इसके साथ ही यह भी मानना ही पड़ेगा कि विधाता की विषमता से जो यह भाँति भाँति की त्रुटि संसार में देख पड़ती है उसका पूरा करने वाला सर्वोत्तम प्रधान कारक अभ्यास ही है ।

“करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान”

जड़के शिक्षा कैसे ग्रहण करते हैं ? इस बात को जिसने कभी सोचा है वह हमारी बात अवश्य मानेगा । बालक जब छोटे से छोटे दरजे में

रहते हैं तभी से अपनी विशेष रुचि किसी एक मुख्य विषय पर प्रगट करने लगते हैं ! किसी विषय में उनकी बुद्धि अधिक धँसती है किसी बात के सीखने को वे अलसाते और जान छिपाते हैं। कोई कोई बातों में वह अपनी अरुचि आदि ही से प्रगट करता है। कोई कोई बात में शीघ्र उसकी बुद्धि पुष्ट पड़ जाती है। कुछ बातों में बड़े यत्न के उपरान्त भी वह कमजोर बना रहता है। किसी को काव्य में बड़ी रुचि है तो गणित के सीखने से दूर भागता है, किसी को दर्शनो ही के अभ्यास में आनन्द मिलता है, काव्य का रस उसके नीरस चित्त में स्थान ही नहीं पाता। किसी की तबियत शिल्प और कारीगरी की ओर अधिक झुकती है। किसी की प्रखर बुद्धि विज्ञान के ज्ञान में अतिशय दौड़ती है। क्यों ऐसा होता है ? इसे यदि पूर्व सस्कार या ईश्वर की देन मानिये तो बहुत कम लोगों का इसमें मतभेद होगा। तब इसके क्या माने आप कह सकते हैं कि इस बालक को आरम्भ ही से अच्छी शिक्षा दी गई है अर्थात् इसके यही माने हैं कि जिस बात की ओर झुकावट होती थी वह विषय तो उसमें खराद पर चढ़े नगीने की भाँति स्वयं जगमगा रहे थे। जिस बात की ओर से वह आलस्य भाव धारण कर अरुचि प्रगट करता था वह कभी भी उसमें भली भाँति सम्हाल दी गई। अन्त में परिणाम इस सब बात का यह हुआ कि उस बालक की शिक्षा के सम्बन्ध में आप कह सकते हैं कि इसे अच्छी शिक्षा या पूर्ण शिक्षा दी गई है। अब बतलाइये इस अच्छे या पूर्ण के क्या माने हैं ? केवल यही कि यद्यपि बहुत बातों में स्वभाव ही से वह बालक अच्छा रहा हो परन्तु उत्तम शिक्षा के प्रभाव से उसके निर्बल अंश भी दूर कर दिये गये और सब विषय में पूर्ण अथवा “कालाक्षरी” वाक्य उसके लिये उपयुक्त होता है।

यह हमने केवल एक दृष्टान्त के ढङ्ग पर दिखलाया जो बात बालकों में देखते हैं। कोई ऐसी वजह नहीं कि जवानों में वह बात न पाई जाय अर्थात् (Na ural gifts) ईश्वर की देन से नहीं आई उसे

भी (culture) अभ्यास के द्वारा बढ़ाना । भेद इतना ही है कि बालकों को इस बात की आवश्यकता है कि कोई दूसरा अपने सहारे से उन्हें लै चले । पर जवानों को भला कौन सहारा देगा यदि अपनी मदद वे आप ही न करै । और इसी का नाम हम मन की दृढ़ता रखेंगे । अब देखना चाहिये इस मन की दृढ़ता का असर उसी आदमी के ख्याल पर किस तरह होता है ।

जो लोग यह मानते हैं कि कुछ लोगों की किसी खास बात की तरफ झुकावट इत्तिफाक से है । ऐसी ही बात आ पड़ी है कि वह उस बात को चाहने लगता है या अच्छी तरह उस बात को समझता है । इस सब का कारण बिल्कुल इत्तिफाक ही है । हमारी जान में ऐसा मानने वालों की बड़ी भूल है । आदमी की पसन्द, तबियत, मिजाज, खयालात, रुचि और अरुचि इसमें छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी बातों पर इत्तिफाक का उतना ही असर है जितना इत्तिफाक से पेड़ में कानी खोतरी पत्तियाँ या फूल फल लग सकते हैं । इन्हीं बातों पर सोचने से इस प्रश्न का उत्तर मिलता है कि कैसे मानसिक दृढ़ता रहने से किसी के खयालात में वह जोर आता है जिसे देख या सुन लोग चमत्कृत होते हैं । जब यह माना गया कि आदमी का मन उसके खयालात के साथ ऐसा नधा है जंसा वृक्ष अपने एक एक रंगोरेशे से नधा हुआ है तो यह सिद्ध हुआ कि किसी मनुष्य के खयालात उसके मन और जवान पर वैसे ही हरे भरे मालूम होंगे जैसे अपने स्थान में जमा हुआ पेड़ हरा भरा मालूम होता है । क्या यह कभी सम्भव है कि पेड़ को आप उखाड़ डालें और उसकी पत्तियाँ हरी भरी बनी रहें ? कभी नहीं । ऐसे ही यह भी सम्भव नहीं है कि किसी के अनोखे खयालात उसके मन को छोड़ कहीं और ठौर तरोताजगी को पा सकें और इसी को हम मानसिक दृढ़ता कहेंगे जिसका अर्थ अनोखापन भी कहा जाय तो अनुचित नहीं है ।

यहाँ तक हमने इस मानसिक दृढ़ता का एक लक्षण लिखा । इस दृढ़ता को हम हठ न कहेंगे । निस्सन्देह हठ की मजबूती इसमें है पर एक

तरह का अनोखापन जो इस दृढ़ता में पाया जाता है इससे हठ या दुराग्रह के दोष का सम्पर्क भी इससे दूर हटा हुआ है। क्योंकि हठ का शब्द सुनने वाला किसी के बारे में तभी प्रयोग करता है जब उसकी मजबूती का तो वह कायल है पर बात उसकी अप्रिय और अप्राह्य जिनको आप मानसिक दृढ़ता के साथ लगा ही नहीं सकते क्योंकि यदि सुनने वालों को ग्राह्य अप्राह्य, प्रिय अप्रिय तय करने की फुरसत मिली तो बोलने वाले की मानसिक शक्ति की प्रशंसा में हम “दृढ़” का प्रयोग करें हींगे नहीं। मानसिक दृढ़ता का मुख्य लक्षण या गुण यह है कि वक्ता सुनने वाले का मन अपनी मुट्ठी में कर ले।

इस दृढ़ मन का दूसरे के ऊपर क्या और कैसे असर होता है इसे हमने प्रगट कर दिखलाया। अब पाठकजन इससे यह न समझ ले कि केवल अति दृढ़ मन वालों ही का असर दूसरे पर होता है यह हमारा तात्पर्य नहीं है। पर यह एक साधारण नियम है कि जब कभी दो चित्त आपस में टक्कर खाँयेंगे तो एक दूसरे पर कुछ न कुछ असर हो हीगा। इसी असर को भली या बुरी सोहबत का असर कहते हैं। सोहबत का असर जरूर होता है। इसको रोकने का सामर्थ्य किसी को नहीं है। यह असंभव है कि एक चित्त अपना असर दूसरे पर पैदा न करे या वह दूसरा भी उस असर को अपने ऊपर न आने दे और यह एक ऐसी अनदेखी बात है जिसका रोकना या उसे कुछ अदल बदल कर ग्रहण करना दोनों की सामर्थ्य के बाहर है। जब यह बात है तो दृढ़ मन वाले अपनी ऊँची समझ और ऊँचे खयालात से कमजोर और दुर्बल चित्त वालों को ऐसा बेकाबू कर डालेंगे जैसा बड़े से बड़े नशा का असर किसी को बेकाबू कर देता है। इसलिये दुर्बल चित्त वाले का दृढ़ मन वाले के साथ सम्पर्क कभी उपकारी नहीं है। इस चुपचाप असर पैदा करने की शक्ति को हम केवल आदमियों ही में नहीं वरन् जड़ पदार्थों

में भी पाते हैं। काठ पत्थर के संग्रह कर चिरकाल के उपरान्त पत्थर हो जाता है अंगरेजी में जिसे फासेल कहते हैं। दो तरह के पत्थर या दो तरह की खान या दो तरह के वृक्ष जो आस पास होते हैं उनका भी बहुत कुछ असर एक का दूसरे पर होता है। हमने यह भी सुना है कि दो खान जो आसपास होती हैं उनमें जो खान बड़ी या तीव्र द्रव्य की खान थी छोटे और हल्के द्रव्य वाली खान को ऐसा दबाया कि कुछ दिन के उपरान्त दोनों एक में मिल गई और दोनों एक ही द्रव्य की खान हो गईं।

अब आप निश्चय कर सकते हैं कि एक मन का असर दूसरे पर कितना होता है। खास कर उनमें जब दोनों में एक अति दृढ़ और दूसरा दुर्बल मन है। अतएव दृढ़ मन यद्यपि उत्तम गुण है पर दूसरों पर उसका असर इतना गुणकारी नहीं मालूम होता और इस दृढ़ मन के साथ सहानुभूति भी हो अर्थात् हर तरह के भले-बुरे, ऊँचे-नीचे ज्ञानी-अज्ञानी सबों के मन में प्रवेश करने की शक्ति भी हो तो दृढ़ मन मधुकर हो प्रत्येक मन का मधु निकाल-निकाल लाभ उठाने की शक्ति बढ़ाता ही जायगा और सत्य क्या वस्तु है इसकी पहचान में एकता होगा।

दिसम्बर १८८६

१८—धर्म का महत्व

इस विषय पर पहले हम कई बार लिख चुके हैं आज जीर्णोद्धार की भाँत उसी की फिर उद्धरणी जो किया चाहते हैं। इसका हेतु यह है कि इस रोशनी के जमाने में धर्म जैसी दुर्बल दशा में आ रहा है वैसा दूसरा विषय नहीं। कदाचित् हमारा यह लेख धर्म की दुर्बलता को दूर हटाने में कुछ सहायक हो। दूसरे यह कि धर्म का विषय इतना वृहत् और निर्भय है कि इसपर जहाँ तक चाहो कलम की कारीगरी भलकाते रहो कभी चुकै ही गा नहीं। निर्भय इतना कि एड़ी बेड़ी कलम चल जाय तो न राजा की ओर से कुछ डर न प्रजा की ओर से किसी तरह की ठाँय ठाँय। धर्म से हमारा यह प्रयोजन नहीं है कि हम किसी एक खास धर्म की प्रशंसा करें और न यही हमारा तात्पर्य है कि हम यह दिखलावें कि अमुक धर्म की बातें बड़ी उत्तम है इससे उसी खास धर्म पर चलना चाहिये। हमको भिन्न-भिन्न संप्रदाय और मतमतान्तरों के भगड़ो से कुछ सरोकार नहीं। भगड़े के रास्ते को छोड़ हम उस तत्त्व का अन्वेषण किया चाहते हैं जो यावत् धर्ममात्र की नेव है। जिस पर सोने चाँदी के पत्तों से बड़े ऊँचे-ऊँचे मन्दिर, धौरहरे, आलीशान मसजिदें और गिरजे खड़े किये गये हैं। इन मसजिद मकबरे मन्दिरों को एक एक अलग अलग परखें तो कदाचित् संभव है हमारे पढ़ने वालों को यह सन्देह होगा कि अमुक धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्त को इसने अवश्य मान लिया है तब तो उनकी जाँच और निखर रहा है किन्तु हमारा प्रयोजन यह नहीं है। धर्म जितने हैं उनकी नेव विश्वास पर है तर्क पर नहीं। धर्म केवल मान लेने की बात है। आँख मूँद धर्मसम्बन्धी बातों को मानते रहो इसी में कल्याण है। बल्कि हम यह भी कहेंगे कि तर्क को सर्वथा स्थान न दै यह बात सदा ध्यान में रहे कि धर्म सब बड़े बड़े

बुद्धिमानों के बुद्धितत्त्व का निचोड़ हैं सुतराम्, उसको बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ मनन करना चाहिये ।

पहली बात जिसपर मनुष्य की भुकावट किञ्चिन्मात्र ज्ञानोदय और समझ के आने पर होती है वह धर्म ही है । प्रत्येक जाति और समाज की सामयिक तथा बीती हुई दशा पर खयाल करने से यही बात मन में आती है कि आदि में जब भाँत-भाँत के विज्ञान और अनेक पदार्थ-विद्याओं का कही लेश भी न था उस समय धर्मसम्बन्धी विषयों पर बड़े बड़े ग्रन्थ बनकर तैयार हो गये थे । बहुत लोगो का सिद्धान्त है कि सुनीतिशिक्षा “मोरालिटी” जो कि सुगठित समाज से सम्बन्ध रखती है पहले पूरी उन्नति को पहुँची तब धर्म या आध्यात्मिक विषय पर देश या समाज की भुकावट होती है किन्तु यह उनका कहना हमें ठीक नहीं मालूम होता । सुनीतितत्त्व के फैलने के पहले आध्यात्मिक विषयो पर मनुष्य की बुद्धि स्थिरता ग्रहण कर तब सामाजिक विषयो पर दौड़ी । बल्कि यों कहा जाय तो उचित है कि धर्म या परलोक का भय न हो तो सुनीतितत्त्व को एक बात भी न चल सके । समाज में सुनीतिजनक बातें एकत्रित जनसमूह से सम्बन्ध रखती हैं और यह समाज का एकत्रित होना युगानुयुग के उपरान्त जब सभ्यता अपने पूरे जोर को पहुँच चुकी तब हुआ किन्तु परमात्मा, परलोक, स्वर्ग, नरक आदि अद्भुत बातों पर लोगों का ध्यान सृष्टि के आरम्भ ही में गया और तब से आज तक लोग उसके ढूँढने से विरत नहीं हुये । जुदे-जुदे धर्म और एक-एक धर्म की इतनी अलग-अलग शाखा-प्रशाखायें उसी का परिणाम हैं । यह प्यास लोगों की आज तक न बुझी और सम्भव है कदाचित् सृष्टि के अन्त तक न बुझे । इसी से “नमो धर्माय महते” इस वाक्य में धर्म को महत् का विशेषण दिया गया है । हाँ, यह अलबत्ता कह सकते हैं कि “मारलरूल्स” समाज में सुनीतितत्त्व के जुदे-जुदे कायदे और कर्म धर्म के पोषक और आध्यात्म विद्या के उन्नति के हेतु हैं । सुनीतितत्त्व के प्रतिपालन से जब समाज

पुष्ट पेंड़ जाती है तब अध्यात्मविद्या की गूढ़ बातों को लोग समझ सकते हैं उसी समझ का निचोड़ जुदे-जुदे दर्शन और फिलासोफी के नाम से प्रचलित हुये। जिनमें न सदसत् विवेक वाली बुद्धि है न विद्या, केवल अपना पेट पाल लेना ही जिनको जीवन का मुख्य उद्देश्य है उनको हमारे इस लेख से कोई लाभ नहीं है। ऐसे को समाज के नियम का पालन केवल इसी प्रयोजन से है जिसमें सुख चैन से जिन्दगी कटै। समाज के नियम का परिपालन धर्म और परलोक का बड़ा भारी साधन है वे कभी न मानेंगे। तब वे सुनीतितत्व से धर्म और ईश्वर को अलग क्यों न मानें किन्तु हम तो यही कहेंगे कि जिनको धर्म और ईश्वर पर पूरा विश्वास है वे ही सचाई, ईमानदारी, दृढ़ता, परस्त्री को माँ बहन के तुल्य समझना, भ्रातृस्नेह इत्यादि सामाजिक नियमों के पालन में दृढ़ और अटल होंगे सुतराम् समाज में सर्वसम्मत और दूसरों के लिये उदाहरण भी वे ही होंगे।

धर्मसम्बन्धी विषय पर यदि सच्चे जी से सोचो ऊपर की व्यर्थ की बकवाद और दांतकिट्टन तथा दुनियादारी या लोकरञ्जना को दूर कर धर्म का ठीक पता लगाना चाहते हो और धर्मसम्बन्धी झगड़ों को केवल इनकी ही बात से तय नहीं किया चाहते कि मोक्ष या परम्पद ऊर्द्धपुण्ड्र लगाने से बनता है त्रिपुण्ड्र और भस्म रमाये से नहीं या यह कि जो रुद्राक्ष धारण करने वाले हैं वे ही स्वर्ग में जायेंगे तुलसी या गोपीचन्दन तथा तप्तमुद्रा धारण करने वाले पतित हैं। कैलाश या मुक्तिपद त्रिपुण्ड्र की आड़ी रेखा में गिरें हो गया है तब तो बात ही निराली है। इस तरह की ठायं ठायं में श्रंणी और समूह की कौन कहे समझदार दो आदमी भी एक मत के होते हुए कम पाओगे। हम उन उन महापुरुषों को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने लोगों के लिये एक एक राह निकाल दिया कि चित्त में कुटिलता को बिना स्थान दिये उस राह पर चला जाय तो अन्त में ठिकाने लग ही जाय पर साथ ही हम अपना शोक भी प्रकट करते हैं कि हम उनके साथ सहमत

नहीं हो सकते । भिन्न-भिन्न दर्शन का भी मूल यही मतभेद है । थोड़ा सोचने वाले नाहक इस बात में अपना अमूल्य समय नष्ट करते हैं कि आप साङ्ख्यदर्शन के अनुसार चलते हैं आप द्वैतवाद के सिद्धान्त के मानने वाले हैं आप अद्वैतवादी हैं । सच पूछिये तो हम सब दर्शनों को एक मानते हैं क्या भया जो एक की बात दूसरे से जोड़ नहीं खाती । जब यह निश्चय है कि सब एक ही बात की खोज में लगे हैं तो एक दूसरे के सहायक है और एक के बिना दूसरा खण्डित हो सकता है । दो बटोहियों का इस बात के लिये लड़ना निरा छिछोरापन है कि उनका रास्ता एक नहीं है । इसी बात को पुष्पदन्ताचार्य ने अपने महिम्नस्तोत्र में बहुत अच्छे ढंग से दिखलाया है ।

“त्रयी साङ्ख्यं योग पशुपतिमत वैष्णवमिति,
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदंपथ्यमिति च ।
रुचीना वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां,
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥”

त्रयी अर्थात् तीन वेद ऋग, यजु, साम, सांख्य, योग, पशुपतिमत, वैष्णवमत ये सब जुड़े जुड़े रास्ते उस रास्ते पर चलने वाले की रुचि के अनुसार टेढ़े या सीधे निश्चित किये गये हैं किन्तु जलमात्र को समुद्र के समान मनुष्यों के लिये तुम्हीं एक ठिकाना हो ।

लोग बहुधा पूछते हैं आप ईश्वर को मानते हैं या नहीं । हम जानते हैं इससे बढ़कर व्यर्थ का प्रश्न दूसरा न होगा और यदि है तो इसी प्रश्न का उत्तर क्योंकि इसका उत्तर केवल हाँ या नहीं इन दो शब्दों में होना असम्भव है । न एक या दो दिन में इस प्रश्न को हम सबसकेंगे बरसों तक लोगों ने इसके एक एक खण्ड को सोचा किया है । हमारे यहाँ के पहिले के ऋषियों से पूछिये तो कहेंगे संकड़ों वर्ष और कई जन्म इसके लिये काफी नहीं है ।

“बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते”

तो स्पष्ट है उस अचिन्त्य अपरिमेय अलख अगोचर की किञ्चित् भूलक का मिलना भी मनुष्य जीवन की सफलता और मुख्य उद्देश्य है।

धर्म का विस्तार और उसका महत्व कुछ हिन्दुस्तान ही की धरती के हिस्से में आया। जिस समय एक-एक देश या जाति के लिये अलग-अलग गुणकर्म का विभाग किया जाता था और हिकमत विज्ञान विद्या की बारीकी, राजनीति की गूढ़ बातों के मर्म समझने की अकिल, मुल्क के तरक्की का जोश, स्वत्वाभिमान इत्यादि यूरोप अमरिका आदि देशों को दिये गये उस समय धर्म की बारीकी और धर्मसम्बन्धी विषयों के सूक्ष्मतत्त्वों के अनुसन्धान की बारीकबीनी इस अभागे हिन्दुस्तान को सौपी गई जिसने धर्म के सूक्ष्मतत्त्वों का अनुसन्धान करते करते उसके सैकड़ों टुकड़े कर डाले और यहाँ तक यह धर्म के पीछे पड़ा कि इसने अपनी जिन्दगी का हीर केवल धर्म ही को माना। खाना पीना उठना बैठना सोना जागना सब में धर्म का दखल कर दिया, यहाँ तक कि चलने में एक पाँव पृथ्वी में धर दूसरा पाँव उठाया चाहो तो धर्म को 'कनसल्ट' विचार लो। अत्यन्त दुर्दशादलित इस हीन दीन हालत में आ जाने पर भी यह अब तक धर्म का पिण्ड नहीं छोड़ा चाहता। हम नहीं जानते इस हतक हिन्दुस्तान की हवा में क्या विष मिल गया है कि हिन्दू तो धर्म की छान करते-करते गर्दखोरे हो ही गये थे ज़रार तरार मुसल्मान भी यहाँ आकर तस्वी हाथ में लै छार हो गये। धर्म और परमार्थ पर दृष्टि रखना बहुत अच्छा और मनुष्य के जीवन की सफलता है पर ऐसा धर्म जैसा हमारे हिन्दू जाति के लोगो में प्रचार पा रहा है केवल घिन और ऊब पैदा करता है। माँ के पेट से निकलते ही जब तक चिता पर न पहुँचेंगे केवल एक धर्मसाधन के अलावा और कुछ जानते ही नहीं। हमारे अपढ़ पुराने खयाल वालों के मन में यह कभी धसता ही नहीं कि दुनिया के और-और हिस्सों में क्या हो रहा है, लोग क्या-क्या तरक्की कर रहे हैं, धर्म की डर और परलोक को लात मार खुदाई का दावा बाँधे हुये हैं। वही ये पग-पग में धर्म-भ्रष्ट होने की डर से व्याकुल गोबर ही

पाथते रहे । माला और तस्वी को ऐसा गहिके पकड़ा कि उलटी सीधी सब तरह की बात इन्हें चिताओ इनके मन में एक भी न धसैगी । धूर्त स्वार्थ लम्पटी जो मजहब की आड़ में खातिर-खाह अपना मतलब गाठते हैं—

“जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्”

इत्यादि अपने प्रयोजन के ऐसे-ऐसे बचन गढ़ के रख दिये हैं कि जिससे जो कुछ समझ भी रखता हो वह चुप रहे, जरा हीलै डोलै नहीं, जो गुमराह हो उन्हें गुमराह बना रहने दे टोकै नहीं । इसी से हमने कहा धर्म की जड़ केवल विश्वास है तर्क नहीं और यही धर्म का महत्व है । आँख में पट्टी बाँध एक ढर्रे पर ढुलकते हुये जब तक चले जाओ तभी तक खैरियत है । धर्म में सब महत्व ही महत्व पाओगं जरा आँख खुली कि वह महत्व धर्म में निरी पोल हो जायगी । या यह महत्व नहीं है बल्कि इस बात की गवाही है कि हिन्दू की कौम कहाँ तक ‘डिजेनेरेट’ पतित और नष्ट भ्रष्ट हो गई है कि त्रिदेव और पचायतन पूजन की कौन कहे शीतला भवानी से लेकर भूत प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी वाले मियाँ गाजी मिर्जा इमामहुसेन तक को पूजती है और फिर भी अपने धर्म के महत्व के घमण्ड में हम फूले नहीं समाते । सच मानिये जब तक इस नासमझी से हम अपना गला न छुटावेंगे तब तक पस्त होते ही जाँयगे । ऐसा बलेश जैसा इस समय हम भुगत रहे हैं कोई दूसरी कौम होती तो न जानिये क्या कर डालती पर हम उसे भी सुख से भेलते जाते हैं । हर तरह की चपकुलिशों में पड़ काँख रहे हैं सही पर उस बँधी लकीर के बाहर न होंगे ! तीस या चालीस वर्ष पहिले जो बात जैसी पाते थे वे सब आज के दिन तक यथास्थित जैसी की तैसी बनी हैं जरा तबदील की गन्ध भी किसी में नहीं पाते । हमारी पतित समाज की नीचे को गिरने की भुकावट आगे से अब इक्कीस विस्वें है उन्नीस नहीं हुई ।

कितनों का मत है स्त्रीशिक्षा इसके सम्बन्ध में उपकारी है पर हम झूठते हैं क्या इसी तरह की स्त्रीशिक्षा हमारे लिये कारगर होगी जैसा

आज तक हुई और होती जाती है ? कभी नहीं । जैसी शिक्षा अब तक हुई उसे देख हमें शर्म होती है और हँसी आती है । ज़ियादतः तो मीरहसन की मसनवी या कोई दूसरे इश्कबाज़ी के किस्से सत्यानाश की जड़ गजलें हमारी स्त्रियाँ घोबती और पढ़ती हैं । कोई-कोई जिनकी मज़हब और धर्म पर श्रद्धा चर्चाई उन्होंने विष्णुसहस्रनाम घोखा पुराण के किस्से कहानियों में अधिक रुचि बड़ी प्रेमसागर ब्रजविलास या शुकसागर पढ़ा मानों औरतों की तालीम का छोर हो गया । टट्टी के आड़ से शिकार करने वाले धूर्तों की बन पड़ी । किसमत खुली घर बैठे माल कटने लगा भार फूक टोनाटनमन वालों की बाज़ार गरम हुई कौम का नीचे को गिरना इक्कीस होता गया उन्नीस होने की कौन कहे । इनको अब तालीम की जरूरत है तो उस तरह की तालीम होनी चाहिये जिसमें इनके नेत्र खुलें । भूगोल इतिहास भाँत-भाँत के विज्ञान इन्हें सिखाये जाय जिसके पढ़ने से इनकी विवेक शक्ति बढ़े हिन्दू धर्म की सब पोल खुल जाय और यह ठीक-ठीक मन में इनके बैठ जाय कि जो हम कर रही है और अब तक करती आई वह धर्म का आभास मात्र निरा अधर्म है । अपनी वर्तमान पतित गिरी दशा का पूरा-पूरा बोध हो जाय और यह जानने लगे कि हमें निपट भोली और सीधी समझ अनेक नाम रूप और भेष से धूर्त लोग हमसे पुजाते हैं और धर्म का महत्व दिखलाय नित्य नित्य हमें बिगाड़ते जाते हैं । ये धूर्तप्रतारक बहाना तो स्वर्ग की राह दिखलाने का करते हैं पर वास्तव में हमें नरक के कुण्ड में भोके हुये हैं । स्त्रियों की दशा का सुधरना कौम की तरक्की की पहली सीढ़ी है और वह तभी संभव है जब इनमें विवेक आवे जो केवल उत्तम शिक्षा के द्वारा हो सकता है । उत्तम शिक्षा का फल नीतितत्त्व के सिद्धान्तों में दृढ़ता 'मारेलकरेज' है जो धर्म सम्बन्धी बातों का प्रधान अंग है इसलिये पुरुष हो चाहे स्त्री जिनमें 'मारेलकरेज' नहीं है उनकी धर्म की ओर झुकावट फीकी और व्यर्थ है ।

१९-वेद क्या है

आर्य सन्तान हिन्दूमात्र में कौन ऐसा होगा जो वेद का आदर न करे और इस बात का अभिमान न करता हो कि हमारे धर्म का मूल वेद है। पुराण और तंत्रों ने वैष्णव, शैव, शाक्त आदि भिन्न-भिन्न संप्रदाय चला कर देश में यद्यपि बहुत अधिक भेद और अनैक्य फैला दिया पर वेद के मानने में सब एक हो जाते हैं। और सब लोग अपने-अपने सम्प्रदाय का मूल वेद ही को मानते और कहते हैं—राष्ट्रीयता (Nationalism) का तो वेद आधार है। जब तक हम वैदिक पथ का अनुसरण करते रहे हिन्दू जाति बराबर प्रबल रही। उधर बौद्ध और जैनियों का उभड़ना इधर पुराण और तंत्रों के प्रचार ने देश में ऐसी भेद बुद्धि पैदा कर दी कि हम बराबर क्षीणसत्त्व और क्षीणबल होते गये।

वेद के सम्बंध में अब यहाँ तीन प्रश्न एक साथ उठते हैं। वेद शब्द की व्युत्पत्ति क्या है? वेद का लक्षण क्या है? और स्वरूप उसका क्या है?

“विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्थाः असौवेदः”
अर्थात्, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पदार्थ जिससे जाने जाँय या जिसमें पाये जाँय वह वेद है। प्रत्यक्ष अनुमान उपमान और आगम इन चार प्रमाणों में आगम वेद ही है। ऋग्वेद भाष्य की भूमिका में सायनाचार्य ने वेद को अपौरुषेय अर्थात् किसी का बनाया नहीं सिद्ध किया है। अनिष्टनिवारण पूर्वक इष्ट प्राप्ति के अलौकिक उपाय को जो जानें वह वेद है। प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों जहाँ गिर जाते हैं और उनसे काम नहीं चलता वहाँ उस वस्तु को हम वेद ही से जान सकते हैं। इसी से वेद की वेदता है और उस वस्तु के जानने की इच्छा रखने वाला वेद का अधिकारी है।

अब वेद का स्वरूप क्या है। इसे वौधायन आदि ऋषियों ने यों लिखा है—

“मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्”

मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक महामुनि जैमिनि ने भी ऐसा ही लिखा है—

“मंत्रब्राह्मणात्मकः शब्दराशिर्वेदः”

मंत्र और ब्राह्मण के शब्दों का समूह वेद है। जिसका विनियोग किया जाय अर्थात् यज्ञ आदि कर्मों में जो लगाया जाय या जिससे काम लिया जाय वह मंत्र है और जो काम उन मंत्रों से से लिया गया उसके विधि की प्रशंसा जिसमें हो वह ब्राह्मण है। उन मंत्रों के इस भाँति विभाग किये हैं ऋग्, सोम और यजु जो मंत्र पाद अर्थात् श्लोक की तरह है वह ऋग् है, जो गान के रूप में है वह साम है और जो गद्य रूप में है बयजु है।

अब दूसरा प्रश्न यहाँ यह उठता है वेद के उत्पत्ति का समय हम लोग निश्चय कर सकते हैं या नहीं ? निश्चय नहीं कर सकते सो क्यों या निश्चय कर सकते हैं सो किस भाँति ? कालिदास आदि ग्रन्थकारों का समय लोगों ने निर्णय कर लिया है और उससे भी प्राचीन लोगों का समय ताम्रपत्र तथा भूगर्भ विद्या के द्वारा बुद्धिमानों ने निश्चय कर लिया है तो सिद्ध हुआ कि बुद्धिसपन्न मनुष्यों ने वेद के समय के निरूपण में भी यत्न अवश्य किया होगा। किन्तु जब हमें यह स्मरण होता है कि मीमांसकों ने वेद को अगोर्ष्य माना है और यह वाक्य स्मृति का याद आता है—

“अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम्।

दुदोह यज्ञसिध्यर्थ ऋग्यजुःसामलक्षणम्”

यज्ञ की सिद्धि के लिये ऋग्, यजु और साम को अग्नि, वायु और सूर्य से दुहा। वेद में जो शब्द मिले उन्हीं से हर एक गिनती अलग-अलग आदि में बनाई गई।

‘वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संख्याश्च निर्भमे’

अर्थात् जैसा अग्नि, वायु सूर्य प्राकृतिक हैं, तद्वत् वेद भी प्राकृतिक हैं किसी के बनाये नहीं हैं। मान लो मनुष्यकृत भी हैं तो किस युग में ये बने इसका बतलाना अति कठिन है इससे यही कहना युक्तिसंगत है कि कब वेदों की उत्पत्ति की गई यह नहीं जान सकते।

यह आर्यों का धर्मग्रन्थ है और धर्मग्रन्थ जितने हैं उन्हें अवश्यमेव किसी ने बनाया है। तब वेदों को भी किसी ने बनाया ही होगा। हाँ यह ठीक है किन्तु वेद हिन्दुओं ही का धर्म ग्रन्थ नहीं है किन्तु यह तो तब का है जब आर्य, अनार्य, हिन्दू तथा म्लेच्छ आदि संज्ञा रही ही नहीं और यह सार्वभौमिक अर्थात् संसार भर के लिये है। केवल धर्म ही का विषय इसमें प्रतिपादित हो सो भी नहीं। अपिच कौन सी ऐसी बात है जिसकी संज्ञा का ज्ञान या पहिले पहिल जिसका नाम हमें वेद से नहीं मालूम हुआ। वादी यहाँ पर अब यह कहेगा कि वेद में यज्ञादि के विधान हैं तब यह केवल धर्म ग्रन्थ नहीं तो और क्या है ? उत्तर में कहा जाता है कि वादी को पहिले तो यही भ्रम है जो वह यज्ञ के अर्थ अग्नि में होम या पूजा पाठ समझ रहा है किन्तु यज्ञ के वास्तव में तात्पर्य किसी बड़े काम (Enterprise) के हैं। बहुत से मनुष्य एक मन हो किसी बड़े काम को कर गुज़रें, वह यज्ञ है जैसा इस समय कांग्रेस इत्यादि किये जाते हैं। “यज्ञ” के जिससे यज्ञ शब्द बना है, देवपूजा, सगतिकरण, दान आदि बहुत से अर्थ लिखे हैं। इसी से वेद मनुष्यमात्र के लिये कहा जा सकता है न केवल आर्य या हिन्दू ही मात्र के लिये। आर्य संज्ञा तो तब से हुई जब संसार में बहुत से मनुष्य सब ओर फैल गये तब जिनका उत्तम आचरण रहा वे आर्य दूये और जो निकृष्ट काम में लगे वे म्लेच्छ, असुर, दस्यु आदि नाम से कहलाये (Philologist) बहु-भाषा-भिन्न जब शब्दों के (Root) जड़ का पता लगाने लगते हैं और उसमें हिन्दी की चिन्दी निकालते हैं, जब लेटिन ग्रीक आदि में (Root) जड़ का पता नहीं लगता तब लाचार हो संस्कृत में

उसे ढूँढ़ते हैं। जैसा Ivory हाथी दाँत जिसके माने हैं। जब कहीं पता न लगा तब संस्कृत “इभ” की ओर झुके। जितने प्राकृतिक शब्द हैं जिनसे प्राकृतिक पदार्थों का ज्ञान होता है सब वेद की भाषा में पाये जाते हैं। शब्द ज्ञान का विषय इतना गहन और दुर्गम है कि यास्क आदि निरुक्तिकारो ने बहुत कुछ छानबीन किया उपरान्त पाणिनि, पतञ्जलि और कात्यायन आदि कितने व्याकरण व्याडि, शाकटायन, शाकल्य आदि न जानिये कितनो ने शब्द वारिधि में गोते मार-मार शब्द मौक्तिको को निकाला जिनसे इस समय की यावत् सभ्य जाति भाषा के ज्ञान में लाभ उठा रही है।

ईसाई जो बाइबिल को धर्मपुस्तक कहते हैं और दावा करते हैं कि समग्र संसार के लिये ईसाई धर्म है और बाइबिल ही सच्ची पुस्तक है उसमें भी वेद की चोरी का पता लगता है। यहून्ना की इंजील के प्रारम्भ में आर्यत है—Words were in the beginning and word was God. प्रारम्भ में शब्दसमूह ही थे और शब्द ही ईश्वर था। पहिले हम लिख आये हैं कि “मंत्र और ब्राह्मण के शब्दसमूह का नाम वेद है।” अब यहाँ पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि पुराणों से वेद को क्या धक्का पहुँचा। इसमें सन्देह नहीं पुराणों में वे प्रतिपादित अर्थ बहुत ही बहुत बढ़ाये गये बल्कि भक्तिमार्ग जिसकी वेदों में कही-कही केवल झलक मात्र पाई जाती है उसका विस्तार पुराणों में इतना अधिक किया गया कि एक शास्त्र बन गया। सैकड़ों ग्रन्थ भक्तिमार्ग के पोषण में बन गये। इसका एक विशेष कारण यह भी ध्यान में आता है कि ईश्वर में भक्ति खुदापरस्ती तथा परकाल के बनाने की चिन्ता भी कौम की कमजोरी की निशानी है। जब तक कौम उरुज पर और देश उन्नत दशा में रहता है तब तक ईश्वरनिष्ठा और भक्ति भाव नहीं सूझता। यह तो प्रत्यक्ष है कि भक्तिमार्ग के अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ तथा भक्तिमार्ग प्रवर्तक आचार्य महाप्रभु कृष्ण चैतन्य, महाप्रभु वल्लभाचार्य, मध्व और रामानुज स्वामी निम्बार्क आदि मुसल्मानी राज्य में हुए। जब देश स्वाधीन

और लोग स्वतंत्र न थे भगवद्गीता के अतिरिक्त कोई ग्रन्थ निरी भक्ति के न थे । दूसरे एक यह भी मालूम होता है कि ससार के लोगो की भुकावट दो ओर मालूम होती है Material and immaterial—पञ्च भौतिक और अपञ्च भौतिक । यूरोप के देशो की प्रवृत्ति पञ्च भौतिक पदार्थ की ओर है । अनेक तरह के नये-नये विज्ञान निकालते जाते हैं । तरह-तरह की कल, भाफ और बिजली के द्वारा जो काम कर रहे हैं उसे देख लोग अचम्भे में आ जाते हैं । हमारे वेद का भी समय पहिले पहिल निरा Materialism पञ्चभौतिक विज्ञान का था उस समय के हमारे आदिम ऋषि लोग कोई विज्ञान या विद्या नहीं बची जिसका सूत्रपात वे नहीं कर गये । उपरान्त Immaterialism आध्यात्मिक या अपञ्चभौतिक तत्वों की गवेषणा आरम्भ हुई उसमे भी वैदिक ऋषि सम्यक् पारगामी हुए । मुसल्मानो के विजयो होने पर जब से हिन्दू जाति अपनी स्वतन्त्रता खो बैठी तब से इनकी असाधारण मानसिक शक्ति तथा शौर्य, वीर्य, आदि उदार गुणो के स्रोत पर डाट सी लगा दी गई । बहुधा लोग भुक्कुआ माला-धारी भक्त बन गये । स्वार्थलम्पट और भीरु प्रकृति के हो अपनापन सर्वथा खो बैठे । भक्तमाल के भक्त सब इसी समय हुये । अब समय सुशिक्षा का नवजीवन पाय हम बहुत दिनों का भूला हुआ अपनापन फिर लाया चाहते हैं तथा अपने पैरो खड़े होने की कोशिशें कर रहे हैं वही राजविद्रोह समझा जाता है । अस्तु, जिससे वेद को अधिक धक्का पहुँचा और उसका तत्वार्थ ढँप गया वह पुराणों का अलंकारिक वर्णन है । जैसा वृत्तासुर का इतिहास, इन्द्र और अहिल्या की कथा । इन्द्र एक नाम परमेश्वर्य युक्त परमेश्वर का है, अहिल्या का अर्थ यास्क ने निरुक्त मे रात्रि का लिखा है, जार के अर्थ क्षय के है । समस्त तेजयुक्त सूर्य ही इन्द्रपद वाच्य यहाँ है । सूर्य के उदय होने पर रात्रि का क्षय होता है यही वास्तविक अर्थ इन्द्र के अहिल्या जार का हुआ । इसी को रोचक और भयानक के क्रम पर पुराणों में इन्द्र को अहिल्या का जार बनने के लिये एक रूपक खड़ा कर दिया गया । ऐसा ही प्रजापति का स्वकन्यानुगमन वाली कल्पना भी कल्पित की गई है । ऐतरेय ब्राह्मण ३-३-६ प्रपाठक है ।

“प्रजापतिर्वै स्वदुहितरमभ्यध्यायत्”

प्रजा के पालन का अधिकार सूर्य का है इसलिये कि सूर्य गरमी से अन्न उपजाता है फल सब पकते हैं। सूर्य उदय होते ही ऊषा (Dawn) पौफट होने लगता है। ऊषा का जन्म तभी होता है जब अरुणोदय होने लगता है। तो सिद्ध हुआ ऊषा मानो सूर्य की दुहिता “कन्या” रूपा हुई स्त्री और पुरुष के संयोग सदृश अरुण रूप किरण बीज के समान सूर्य उसमें निक्षेप करते हैं। इस कथा को अत्यन्त अनर्गल और भ्रष्ट कर पुराणकारों ने वर्णन किया है। ‘काम’ कितना भयानक है कि प्रजापति को भी अपने वश कर लिया इससे काम को दबाना ही कल्याण का मार्ग है यह इससे उपदेश निकाला। इत्यादि, जितने रूपक इतिहास के क्रम पर पुराणों में गढ़ दिये हैं सबो का ऐसा ही एक-एक तात्पर्य निकलता है वृत्रासुर की कथा, समुद्रमथन आदि इतिहास सब रूपक में विस्तार के साथ रोचक कर ऐसा दिखाये गये हैं कि वास्तविक अर्थ उनका बिलकुल छिप गया। इन ऐतिहासिक रूपकों में ऐसे कोई भी न निकलेंगे जिनमें कोई न कोई अच्छा उपदेश न निकलता हो।

अस्तु, वेद क्या है इस बात की टटोल हमारे पढ़ने वालों को कुछ न कुछ अवश्य हो गई होगी। एक विशेष बात वैदिक साहित्य (Vedic Literature) की ओर भी ध्यान देने के लायक है कि वेद के जिस भाग को विचारो चाहे वह अध्यात्मिक विषय का हो चाहे आमुष्मिक राष्ट्रीयता का भाव सब ओर चुम्पा पड़ता है। जिसमें अपने देश का योगक्षेम और आर्य जाति की उत्कर्षता सर्वोपरि स्थिर रहै यही वैदिक ऋषियों के सिद्धान्त का सारांश है और उसी को वे सबसे अधिक और मुख्य धर्म मान गये हैं इसी से यह कहना अनुचित न होगा कि स्वराज के लिये वेद महोपकारी है।

जनवरी १९१०

२०--तीर्थों की तीर्थता

पुण्य पुज तीर्थीभूत जिन महात्माओं के नाम से या जिनकी यादगारी में इतने तीर्थ नियत किये गये हैं वे न जानिये कैसे महापुरुष रहे होंगे कि युगानयुग समय बीत जाने पर भी उस तीर्थ का महत्व अब तक बना है। श्रद्धालु विश्वास रखने वाले के मन में तीर्थ की पुण्य भूमि में पहुँचते ही कैसे-कैसे पवित्र-भाव उदय होते हैं वरन् कलुषित हृदय के लोग भी थोड़ी देर के लिये वहाँ पहुँच सात्विक प्रकृति के हो जाते हैं। जन्मपर्यन्त जो वैसी ही तबियत उनकी बनी रहे तो उनके जीवन्मुक्त होने में कोई सन्देह न रह जाय। तीर्थों में यह असर देख प्रश्न उठता है कि इन तीर्थों में कौन सी ऐसा बात है जिसका इतना प्रभाव है? कितनों का मत है कि इस तीर्थता की कोई और बात नहीं है वरन् (Association of ideas) वहाँ पहुँच भूतपूर्व वहाँ के वृत्तान्त या वहाँ के पुण्यपीयूषवारिधि समान उन महापुरुषों का स्मरण जिनके सुकृति का अखाड़ा वह भूमि है तीर्थता कही जायगी। जिनका मन सदा सुकृति की ओर भुका है पाप और किल्बिष से कलुषित न हो सदा पवित्र वायु के सपर्क से हरा-भरा और तरौताजा है उन्हें तीर्थ क्या पवित्र करेगा वरन् वे ही उस तीर्थ में जाय उसे पवित्र कर देते हैं जैसा कहा है।

“प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं
हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः” ॥

गङ्गाजी स्वयं कहती हैं ऐसा पुरुष कब आय स्नान से मुझे पवित्र करेगा जो पराई स्त्री पराया द्रव्य पराये द्रोह से मुँह फेरे हुये है।

“परदारपरद्रव्यपरद्रोहपराङ्मुखः

गङ्गा ब्रूते कदागत्य मामयं पावयिष्यति” ॥

और भी

‘शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्’

मन पवित्र है तो तीर्थ से क्या

“आत्मैवतीर्थ शुचिमानसानाम्”

तात्पर्य यह कि तीर्थ में तीर्थता संपादन करनेवाले ऐसे ही सात्विक जन हैं जो मन के पवित्र हैं। ऐसे महापुरुष केवल तीर्थ में तीर्थता संपादन के हेतु हुये तो कौन सी बड़ी बात हुई अपिच ऐसों से तो समस्त जनपद पवित्र है जहाँ होंगे उस देश या भूमि को सनाथ किये होंगे। जिस देश या काल में ऐसे लोग अधिक हो वही देश तीर्थ और काल पुण्य काल है। दानशील श्रद्धालुओं को चाहिये ऐसे पुण्य तीर्थ और पुण्य काल को हाथ से न जाने दे जहाँ तक हो सके इसका लाभ उठावें। अनधिकारियों में दान का असद्व्यय कर पुण्य के बदले पाप न बटोरें। हमारे यहाँ ऐसे विवेकी दानियों के न रहने ही से देश निरन्तर क्षतिग्रस्त होता जाता है। इस भूमण्डल में यूरोप और अमरिका के कई एक देशों का सिर ऊँचा है और समस्त जनसमूह में उस देश में जो जाति बसती है वह सब के ऊपर चमक रही है सो इसीसे कि उनके बीच ऐसे विवेकी दानशील विद्यमान हैं। दानियों की कमी हमारे यहाँ भी नहीं है पर विवेक नहीं है तो

‘विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपातः शतमुखः’

देश का देश नीचे को गिरा जाता है और अनधिकारियों में उनके कुटुंबे दान से तीर्थ की महिमा भी घटनी जाती है। यही लीला जो कुछ दिन और रही तो इन पुण्य तीर्थों पर श्रद्धा काहे को बाकी रह जायगी। और-और देशों में धर्म सम्बन्धी या समाज सम्बन्धी बातों में उपयोगिता (Utility) का बहुत खयाल लोग रखते हैं। हमारे यहाँ भी जितनी बातें धर्म या समाज से सम्बन्ध रखती थी सबों में उपयोगिता पर ध्यान रहा। ऋषियों ने जिसका जब जैसा उपयोग समझा तब तैसा उसे प्रचलित किया अब वही Custom निरा प्रचार से उसका बर्ताव

देखा जाता है। ग्रन्थ परम्परा में जो चल पड़ा सो चल पड़ा तले तक दृष्टि फैलाय उसके उपयोग पर किसी का ध्यान जाता ही नहीं। जिस किसी ने उपयोग पर नजर दौड़ाया तो

‘यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धम्’

उपस्थित हो ऐसा गला घोटने लगता कि उस तत्त्वजिज्ञासु की एक नहीं चलती और यह प्रचार ही अब इस समय हमारा धर्म-कर्म आचार विचार रहन-सहन सब कुछ हो रहा है। धन्य अज्ञता महाराक्षसी तेरा बोलबाला रहे तू साम्प्रत बड़ा उपकार कर रही है नहीं तो यह अभागा भारत कभी का उठ खड़ा होता। ‘कस्टम्’ प्रचार के नाम से हजार मन का पत्थर लिये तू भारत की छाती पर सवार रिवाज की गुलामी में तत्पर है।

मार्च १९०६

२१—हमारे धर्म सम्बन्धी खर्च

इस टूटी दशा में भी हम लोगों का जितना खर्च धर्म सम्बन्धी कामों में होना है उतना और और बातों से नहीं। बल्कि हम तो यही कहेंगे कि जितना हम लोग धर्म के सम्बन्ध में खर्च करते हैं उसका चौथाई भी और और देश वाले नहीं करते। पर यहाँ का धर्म सम्बाधी खर्च बहुत कुछ ऊटपटाँग होने से किसी तरह का उपकार या देश की भलाई में उसे नहीं गिन सकते। बड़े-बड़े दान, तीर्थ-यात्रा, मन्दिर, शिवाले, धर्मशाला का बनाना बस ऐसी ही ऐसी पाँच चार बातें हैं जिनमें हमारे देश का करोड़ों रुपया उठ जाता है और वे सब बातें ऐसी हैं कि इनसे उपकार और भलाई होना एक ओर रहा हानि और नित्य-नित्य हमारी हीनता और अवनति अलबत्ता होती जाती है। कारण इसका विचार कर देखते हैं तो यही समझ में आता है कि एक तो हमारी हिन्दू की कौम अत्यन्त 'कनसरवेटिव' लकीर पर फकीर जितना बाप-दादो के समय से होना आता है उससे बाल बराबर इधर-उधर न हटेंगे। किसी नई बात का करना मनहूँस अमगुन और पाप समझा जाता है। दूसरे परोक्ष साधन और परलोक बनाना इनके जीवन का उद्देश्य है। कौआ कान लिये जाता है कान न टोयें पीछे दौड़ उठेंगे। कोई इनसे कह भर दे कि इस बान के करने से परलोक सुधरता है स्वर्ग की सीढ़ी लग जायगी बस खट-खट चढ़ते चले जाओगे तो आगा-पीछा कुछ न देख इसका ब्याल कभी न करेंगे कि परलोक और परमार्थ भार में जाय यह लोक तो बनावें।

हमारी हिन्दू कौम की ऐसी ही ऐसी दो-चार बातों ने इस समय के धूर्त, लालची, स्वार्थपरायण ब्राह्मणों को अपना मतलब साधने के लिए मौका दे दिया। परलोक का रास्ता देखने के बहाने मूर्ख अपढ़

गँवारों को जिस ढङ्ग पर चाहा ढुलका लिया और ऐसी-ऐसी बातें निकाली कि अपने चंगुल के बाहर किसी को रक्खा ही नहीं। यहाँ तक कि संस्कृत तथा हमारे वेदादि शास्त्रों में परलोक साधन वाली बातों को छोड़ ऐहिक इस लोक के उपकाराय बड़े-बड़े आधुनिक विज्ञान तथा तथा अन्य समस्त विद्याये जिनसे और और देश वाले हम पर प्रभुता कर रहे हैं उनका पता भी संस्कृत के ग्रंथों में नहीं लगता। धन्यवाद है श्री स्वामी दयानन्द को कि जिन्होंने लोकोपकारी बातें वेदों में से बहुत कुछ छाँट कर अलग कर लिया और जितनी दूकानदारी या धूर्तों की कल्पना संस्कृत में समझी गई सबको अलग कर दिया। मैं दयानन्द के मत का नहीं हूँ किन्तु केवल धूर्तों की सी महज किल्लेदराजी के बल उनका गुण भी नहीं मेटा चाहता। स्वामी दयानन्द के इरादे के माफिक ऊटपटांग बातों में इतना धन हम लोगों का अपव्यय और फजूलखर्ची में न लग विद्या-वृद्धि, अनाथालय आदि उत्तम कामों में लगाया जाय तो देश का कितना कल्याण हो। पर कौन करे इतना ही मुँह से निकाल डालना समाज में हमारी जीट उड़ाने के लिए काफी हुआ है। इससे हम कहते हैं हिन्दुस्तान के कायाकल्प के लिए मजहबी जोश का कम होना बहुत उचित और पहिली बात है। इन दिनों की सभ्य जाति में यद्यपि कुश और जल से सकल्प कर दान नहीं दिया जाता पर एक ही को असंख्य धन ठूस देने की अपेक्षा भरे को भरने के माफिक व्यर्थ काम से जिसमें सर्व-साधारण का हित हो वैसे काम में रुपया देना यथोचित दान कहला सकता है। यो तो अपना धन है मन मानता जितना चाहो लुटाओ कोई मना करता है? परन्तु दान देना जिस प्रयोजन से रक्खा गया है वह मतलब इस प्रकार के दान से जो हम लोगों में प्रचलित है नहीं निकलता।

मुसलमानों की शरा में आमदनी का चालीसवाँ हिस्सा ख़ैरात करना लिखा है पर हम लोगों के धर्मशास्त्र में आमदनी का दसवाँ हिस्सा लिख दिया गया है। क्या कहना हम लोगों का सा दान-शूर

दूसरा कौन होगा ! देना ही तो हमने सीखा, लेना तो जानते ही नहीं । दूसरा ऐसा कौन दान-शूर होगा, देने में शर हम और लेनशूर बिलाइत वाले । जब देने को अब और कुछ न रहा तो मांस चाम शरीर से निकाल-निकाल दे रहे हैं और वे लेने में ऐसे जमामंद कि जो कुछ पाते हैं ढोये लिये जाते हैं । खैर जो कुछ बच रहा है उसी को बचाए रहते और सौत के रखते सो परलोक बनाने और धर्मधुरन्धर बनने की श्रद्धा ऐसी चर्राई हुई है कि कलियुग के कर्ण बन कुपात्रों में अपने संचित धन को खूब लुटाये देते हैं । धर्म के खयाल से जो अपव्यय हम करते हैं उसका आधा भी लकीर पर न चल अकिल को काम में लाय देशकाल के अनुसार प्रचलित रीति के अनुसार सर्वसाधारण के उपकारी कामों में लगावें तो जिस दुर्दशा में हम पड़े अनेक कष्ट भोग रहे हैं सब हमसे दूर हो जाती । मंदिर, शिवाला, घाट में लाखों बिलट जाय, स्कूल कायम करने में विद्यावृद्धि के लिए कुछ देना फजूल मानते हैं । सरकार साधारण शिक्षा कम किया चाहती है इसीलिए फीस हद् से जियादह बढ़ा दी गई । अब गरीबों के बालकों को उत्तम शिक्षा तो एक ओर रही साधारण शिक्षा भी दुर्घट हो गई है । यदि हमारे धनीजन अपने बहुत से धर्म सम्बन्धी अपव्यय तोड़कर या उस अपनी बेवकूफी को कुछ कम कर उस धन को साधारण शिक्षा में लगा दें तो कितना उपकार हो और धर्म तो इतना हो कि सात स्वर्ग और अपवर्ग की प्राप्ति भी इस धर्म के आगे भूख मारती रहे । हाँ हानि इसमें इतनी अलबत्ता है कि उनके कूढ़ दिमाग हमजिन्स हमनशी गिर्दानवाह वाले उनकी तारीफ इसमें नहीं करेंगे । भाट भगतिये कत्थक भड्डये भिखमगे आह्वान बाह्वान सण्ड मुसंडे पण्डे उनका यश इसमें न गावेंगे । उनका धन तो हराम का बेमेहनत खाने वाले मुफ्तखोरे वैरागी कनफटे उदासी सन्यासी आदि कुपात्रों को खाना बढ़ा है तब हमारे बताये हुए क्रम से अनुसार क्यों खर्च किया जाय !

‘तदभाग्यं धनस्यैव यन्नाश्रयति सज्जनम्’

चन्द्रोज्ञा नाम के लिये गंजिया की गंजिया खाली कर डालें पर

सामयिक सभ्यता की रीति पर अपने मन में कुछ खर्च करना व्यर्थ मानेंगे। दूसरे तीसरे वर्ष जो ठौर ठौर तीर्थों में मेले हुआ करते हैं वह हमारे देश में मजहबी जोश का नमूना है। प्रतिवर्ष कांग्रेस होती है किसी को कुछ मालूम भी नहीं होता कि यह क्यों की जाती है इसका क्या उद्देश्य है और कहाँ तक राजनैतिक भलाई इसके द्वारा संभव है। वही इन मेलों में हजारों कोस के आदमी टूट पड़ते हैं तमाम दुनिया भर के मौले कुचैले कसीफ लोग इकट्ठे हो हैजा पैदा कर रफूचक्कर होते हैं।

हैजा जो शुरू हो गया तो एक छोर से दूसरे छोर तक बरसों के लिये उसकी लर नहीं टूटती। धन्यवाद है गवर्नमेंट को जो इन मेलों का इतना प्रबन्ध करती है। कही यदि इनका ठीक प्रबन्ध न किया जाय तो न जानिये क्या आफत मच जाय। अभी हाल में जगन्नाथपुरी के मेले में इतने लोग भरमारे कि सुनते हैं रुपये का चार सेर उसना चावल बिक गया। पारसाल हमारे यहाँ प्रयाग में कुम्भ का मेला होने वाला है। विन्ध्य पहाड़ के कँगूर समान चूतर वाले आवारा खाकी बैरागी और नागे न जानिये कहाँ-कहाँ से आकर जमा होंगे और कई लाख आदमी एक बारगी आकर टूट पड़ेंगे। स्वर्ग की सीढ़ी लग जायगी गंगाजी में स्नान के लिये सिर बोरा कि विष्णु दूत खड़े रहेंगे हाथ पकड़ बैकुण्ठ में उन्हें लुकावते जाँयगे।

धन्य विश्वास, हजार लानत है इस मजहबी जोश पर। विलायत की भाँति किसी राजनैतिक आन्दोलन में इसके सौ हिस्से में एक हिस्सा भी जमा होते तो न जानिये क्या हो सकता था। अँग्रेजी राज्य के स्वास्थ्य से ज्यो ज्यो हमारी आशाइस और आराम बढ़ता जाता है त्यो त्यो हम अपनी बेअकली और बेवकूफी को पसारते जाते हैं। पहले इसके जब रेल न थी तब इन मेलों में न तो इतनी भीड़ होती थी और न इस अपव्यय का तीन तिहाई गवर्नमेंट के पेट में जाता था। प्रजा का

विचार शक्ति वाले भव्य जन जमा हो प्रजा के कल्याण की बात सोचते थे और यही इन मेलों की बुनियाद का बाइस हुआ। अब तो श्रद्धालु यात्री कम आते हैं पर चोर, ठग, उचक्के लुच्चे, पेटारथू तीरथ करने वाले विशेष आते हैं और जो जो विपत्तें इन मेलों में होती हैं वे कही नहीं जा सकती। अपव्यय के अतिरिक्त शारीरिक क्लेश कितना सहना पड़ता है पर तौभी हमारे धर्मशीलों की श्रद्धाजाड्य तो है कौन कहे यह इनसे दूर हो।

वही मेला इस समय अमरिका में चिकागो प्रदर्शनी का हो रहा है। दुनिया भर के सम्य मनुष्य चुन-चुन कर वहाँ इकट्ठे होंगे। जो जाँयगे उनका जन्म सफल हो जायगा। कुछ न कुछ ले ही कर वहाँ से आवेंगे। इस लेने से हमारा यह प्रयोजन नहीं कि वहाँ रुपयों की खोदान है जो जाँयगे मनमानता बटोर लावेंगे किन्तु कुछ ऐसा ज्ञान प्राप्त कर या कोई ऐसी नई बात सीख के वहाँ से लौटेंगे जो जन्म भर उनको काम देगी। कसर सिर्फ इतनी है कि वहाँ इस मेले में अज्ञ, अपाहिज, निष्पुरुषाथियो के लिए स्वर्ग की सीढ़ी नहीं लगती। समस्त संसार भर के जुद्धे-जुद्धे देशों की पैदावारी हुनर कारीगरी और विज्ञान वहाँ दिखलाया जायगा। ऐसी अभूतपूर्व प्रदर्शनी अब तक कही किसी देश में नहीं हुई। वहाँ का सब हाल सुन-सुन कागजों में वहाँ का बयान पढ़-पढ़ जी में टूट होती है कि ये सभी हमारे ही हमजिन्स आदमी ही हैं जिन्होंने कहाँ तक अपनी तरक्की किया है वही हम हैं कि लड़की लड़को के ब्याह गौने से तथा बिगड़ी हुई समाज की बेहूदा अड़चन से फुरसत नहीं कि सिवाय खाने और हगने तथा येन केन अपने इस जले पेट को किसी तरह भरने के और कोई विशेष काम कर सके। फुरसत मिली भी तो दिन रात इस फिकिर में चूरचूर रहते हैं कि क्योंकर बिहिश्त की राह पावें जिसमें आवागमन से छुटकारा पाय निर्वाणपद की प्राप्ति करें। अस्तु, हमें इनका निर्वाणपद भी स्वीकार है यदि सचमुच उसे निर्वाणपद मिलता हो। वरन् जैसा ढंग हमारा है उससे निर्वाणपद तो नहीं रसातल का मार्ग अलबत्ता सीधा होता जाता है पर

कौन कहे इनके कुलच्छन देख देख अपना जी कुढ़ाना है । कुढ़ाते रहो—
कोई गाढ़ी बुरी कमाई कमा रक्खा है जिसका भोगमान भुगतने को
हिन्दुस्तान ऐसे सत्यनाशी देश में इस बिगड़ी पतित समाज के बीच जन्म
पाया । ईश्वर से प्रार्थना है कि यदि पुण्य का फल रूप पुनर्जन्म सचमुच
होता है तो अब की बार सहारा के रेगिस्तान में जन्म हो पर हिन्दुस्तान
ऐसे हतक्र देश में नहीं किम्बहुना ।

जून १८६३

२२--कौम

(Nation)

नया उत्साह, नई उमंग, नया जोश, नई सभ्यता, नई तालीम से भरे हमारे नव शिक्षितों की चन्द्रकला समान बढ़ती हुई नई नसल ने अपनी मीठी तोतरी बोल से ज्यों ही कुछ बोलना आरम्भ किया त्योंही पहले यही द्विअक्षरी महामंत्र--कौम-कौम-कौम--एक समय तुतला उठे। क्या विचित्र कारगरी और अद्भुत महिमा इन दो अक्षरों की है जो एक नगर या एक प्रान्त की कौन कहै सम्पूर्ण देश के देश को या यों कहिये सम्पूर्ण बर्रिआज़िम (Contenant) भर को एक कर सकता है। कहो अथाह समुद्र को पाटकर गोष्पद तुल्य कर डाले। कहो बड़े-बड़े पहाड़ों को चूर-चूर कर रेत में मिला दे ! कहो डूब कर आताल पाताल को थहा लावे। हड्डेड हार्स पावर इंजिन हजार मत्त गयन्द गजराज इसकी ताकत के आगे शरमा कर मुँह छिपा लेते हैं। हमारे यहाँ लिखा है अमुक योद्धा में दस हजार हाथी का बल था। इसका तात्पर्य भी यही है कि उस वीर में इतना कौमी जोश था कि १०००० हाथी की सेना युद्ध में ला सकता था। दारा और सिकन्दर से फतेह्आब इसकी विजयिनी शक्ति के सामने कोना भाँकते हैं। रोम के सीज़र्स और नेपोलियन बोनापार्ट से विजयी पुरुषों को भी इसने अपने विक्टरी के मुकाबले रास्ते की ठिकरी समान बेकदर कर डाला। ऐक्य, साहस, स्वत्वाभिमान, शौर्य, वीर्य आदि पौरुषेय गुणों की यह यहाँ तक संजीवनी बूटी है कि इस जातीय "कौम" का भरपूर जोर जिस समय जब और दुनिया के जिस हिस्से में जहाँ मौजूद रहा उस समय उस देश के लिए सत्ययुग (गोल्डेन पीरियड) या जो कुछ उसे कहिये सब फबता है। इसके रहते उस देश को उन आदमियों को देवता आर्यश्रेष्ठ जेता या जो कुछ कहिये हमें सब

स्वीकार है। इस जातीयता का साम्राज्य रहते उस भूमि को हम स्वर्गभूमि बैकुण्ठदेव यजन आर्यभूमि जो कहै सब उचित है।

अपनी कौमियत बनाये हुए इंगलैण्ड एक क्षुद्र टापू बड़े-बड़े देशों का हिमायत करने वाला राजनीति, कलाकौशल, साइन्स, विज्ञान, कविता, फिलासोफी आदि यावत् विद्या का भण्डार बना हुआ सभ्यता, श्रेष्ठता, विज्ञता की प्रथम श्रेणी में पहुँच सभ्यातिसभ्य देशों का मुकुटमणि बना हुआ जो चमक रहा है स्वयं साक्षात् नन्दनवन है। पुत्र उसके सुपुत्र नन्दनवनविहारी अमरगण हैं। पुत्रियाँ उसकी सब मेनका, उर्वशी, तिलोत्तमा को लजाने वाली वीरप्रसू वीरमाता कहलाती हैं। दूर-दूर देश के महाराजा शाहन्शाह जिनसे इनको कुछ वास्ता नहीं वे भी इतात के साथ अपनी बचन रचना से जोड़से प्रसन्न रक्खा चाहते हैं। सो यउमय उसी बीज का महामोहन दो अक्षरी "कौम" इस मंत्र के साधन में। हम उस साधन से वंचित होने ही से काले, अमभ्य, जित, नेष्टिव, मूर्ख, अर्द्धशिक्षित, अशिक्षित, गँवार हैं। कौमियत का शुभ लक्षण दूसरे पर अपना स्वामित्व रखने की कौन कइ-गवर्नमेण्ट की सेवा, गवर्नमेण्ट की नौकरी के लिये भी ललाते और तरसते फिरते हैं। तब उसकी समता या उस पर उल्टा अपना प्रभुत्व जमाने की बात जीभ पर लाना ही हमारे लिए महापाप है।

इस मंत्र के साधक religion, creed, race मतमतान्तर के भगड़े चित्त के विश्वास या जाति-पाँति से कुछ वास्ता नहीं रखते। उनका मोटो है.—

Human race all bretheren and God is their common father.

मनुष्य मात्र सब भाई है और ईश्वर उन सबों का साधारण पिता है। उनको इससे कुछ वास्ता नहीं जो पूछने बैठें कि आप किस ऋषि के वंश में हैं? किस पैगम्बर को पूजते हैं? आप काले रंग के तो नहीं हैं? आप उसी खित्ते में बसते हैं जहाँ हम हैं तब बस आप हमारी कौम के बड़े

भारी दायरे में लाचारी कि आ गये । जिस देश का उत्थान या पतन होना होता है वहाँ उस देश के लोगो मे पहले ही से कौमी तरक्की या कौमी तनज्जुली के आसार नजर पड़ने लगते है । अभीष्ट, उदारभाव, उत्साह, साहस, वीरता आदि कौमी तरक्की के आसार है । दैन्य, डर, कोमलता, जनखापन, भांग-निप्सा, लोल्य, अधैर्य आदि अधःपात के चिह्न है । हिन्दुस्तान मे इधर पीछे - पीछे मिक्ख और मरहठो मे कौमी जोश कुछ-कुछ आ चला था पर ऐसे थोडे समय तक रहा कि पूर्ण प्रौढ़ता को न पहुँच जल्द छिन्न-भिन्न हो लेशमात्र को भी कही जातीयता का भाव बच न रहा । अब फिर जातीयता की बेल इस बड़ देश के प्रत्येक प्रान्त मे जहाँ तहाँ पसरते दृये देख आशा होती है कि कदाचित् हमारे नव शिक्षिता ही का उद्योग सफल हो और नये सिरे से खोये दृये धन के समान फिर से हमारे मे जातीयता का भाव आ जाय तो क्या आश्चर्य है ।

जनवरी १८८६

२३--कालातिक्रमण

(Procrastination)

कालातिक्रमण मनुष्य में ऐसा भारी दोष है कि इससे शाखा प्रशाखा के समान सहस्रों दोष उत्पन्न होते हैं। जिस देश या जाति में उन्नति होने वाली होती है या होकर प्रौढ़ पड़ती है वहाँ से यह कालातिक्रमण दोष पहले अन्तर्हित हो लेता है तब उन्नति के सोपान का आरंभ होता है और जिस देश या प्रान्त भाग में हानि या अवनति का हाट चमकता है तो प्रधान सघटक अवनति का यही कालातिक्रमण दोष आदि से अन्त तक साथ नहीं छोड़ता। सच पूछिये तो यह दोष एक प्रकार का आगम सूचक चिन्ह है जिससे भटपट यह निष्कर्ष हम निकाल लेते हैं कि अमुक जाति या सम्प्रदाय में जो उन्नति या तरक्की के लक्षण दृष्टिगोचर हुए हैं सो सच्चे हैं या बनावटी।

यह एक प्रकार की कसौटी है जिसके द्वारा मनुष्य जाति के स्वाभाविक सुवर्ण की परीक्षा सहज में हो जाती है। यह दोष जिस प्रकार अनुचित और निन्दित काम के प्रकरण में लाभदायक है वैसे ही प्रत्येक शुभ और भले कामों में हानिकारक और निंदा का उत्पादक भी होता है। यह कालातिक्रमण दोष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों वर्ग में बाधक होता है। इसीसे नीतिकारों ने काल-विभाग को अर्थात् समय को अपने सब कामों में बराबर से बाँटे रहना बड़ा भारी गुण उन नरेशों के लिए ठहराया है जिनके यहाँ सदा कार्य की बाहुल्यता रहती है। कहा भी है:—

“माय सन्ध्यामुपासीत नास्तगेनोदगतेरवी
शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत्”

इस श्लोक से उत्तरोत्तर आवश्यक कार्य का विवरण किया है ।
 १। काम छोड़ कर भोजन करना चाहिये और सहस्र काम छोड़ कर
 नान इत्यादि । नीतिरत्नसंग्रह में लिखा है :—

“काले स्थाने च पात्रे च न हि वृत्तिं विलोपयेत् ।

एतद वृत्तिं विलोपेन राजा भवति गहितः ।”

परत जब चित्रकूट में रामचन्द्र से मिलने गये थे उस समय रघुकुल-
 प्रुरीण श्री रामचन्द्र ने भरत से प्रश्न किया था कि ‘कहो भरत !
 अब नौकर-चाकर तथा और भृत्यो को उनके परिश्रम का वेतन ठीक
 समय पर मिलता जाता है या नहीं ? क्योंकि उक्त बात के न होने से
 प्रनेक उपद्रव उठ खड़े होते है ।” भारतवर्ष के पण्डितो ने कालातिक्रमण
 दोष को सदैव से अनुचित और अहित ठहराया था और उसी के मूल
 पर पक्ष मास दिन के क्रम से नित्य नैमित्तिक कामो को बाँध दिया है
 जिसमे नियत समय के विपरीत कोई काम न हो, जैसे क्षौरकर्म, वस्त्र
 धारण इत्यादि । उत्तरायण और दक्षिणायन के भेद से वर्ष के दो भाग
 कर दिये जिसमे उपनयन मुण्डन, आदि उत्तरायण के विहित कार्य
 दक्षिणायन मे न हों ।

यह कौन नहीं जानता कि कालातिक्रमण हो जाने से समय पर
 बिना जाते बोये खेती नष्ट हो जाती है । समय से चारा पानी न पाने
 से हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, मना, तोता आदि मर जाते है । समय पर
 प्रौषधि न करने से रोग अमाध्य हो जाता है । समय पर उचित शिक्षा
 न पाने से लडकी लडके मूर्ख हो जाते है । अमुक समय पर अमुक काम
 करेगे, अमुक को अमुक पदार्थ देगे । इन प्रतिज्ञाओं को पूर्ण न करने से
 मनुष्य मिथ्यावादी और भ्रष्ट प्रतिज्ञ प्रसिद्ध होकर अपनी सब साख और
 गतीति खो बैठता है इत्यादि । जहाँ देखिये इस कालातिक्रमण दोष का
 नेपथ्य ही पण्डित लोग करते गये है । चाणक्य ने लिखा है—

“सिद्धमन्त्रं फल पक्व नारी प्रथमयौवनम् ।

कालक्षेपो न कर्तव्यो यथा लब्धं समाचरेत् ॥”

इन सब बातों के होते भी हमारे देश के लोग इस दोष को नहीं छोड़ते । विशेष कर हमारे नरेशों में जिनकी प्रातः सन्ध्या साँझ को होती है और सायं सन्ध्या अर्द्धरात्रि को । जिन्हें पूजा और सोने से छुट्टी नहीं मिलती उनसे क्या आशा की जा सकती है कि अपने राज्य का कुछ अच्छा प्रबन्ध या देश का कुछ कल्याण करेंगे । इसी दोष के कारण निमित्त और निमित्तक दोनों को कैसा कुछ क्लेश सहना पड़ता है, कही पर भोज्य-वदार्थ के सपन्न न होने से निमित्तितों को क्लेश होता है । सत्य-नारायण की कथा में तो लोग ऐसा ताड़ के चलते हैं कि ठीक नैवेद्य और पञ्चामृत बटने के समय पहुँचें जिसमें एक पैसा जो पोथी पर चढ़ाना पड़ेगा वह भी बच जाय । यही दशा सभा और कमेटियों की है । आवाहन पत्र या सूचना में जो समय नियत रहता है बहुत थोड़े उस समय पर पहुँचते हैं । प्रायः लोग यही अनुमान कर लेते हैं कि सब लोग विलम्ब ही में आवेंगे मानो विलम्ब में आना एक स्वाभाविक धर्म हो गया है । यहाँ के लोगों में यह दोष इतना बढ़ गया है कि इसके कारण बड़े दृढ़ नियम भी तितर बितर हो गये । कचहरियों और अदालतों में जिन राजसभासदों को ठीक दस बजे आना चाहिये वे प्रायः विलम्ब कर आते हैं । परिणाम में रात को लैम्प जला कर मुकदमे सुनते हैं । जहाँ उन्नतिशाली देश के लोग भी यहाँ आकर कालातिक्रमण दोष को आदर देने लगे वहाँ के निज निवासियों के स्वभाव से इस दीर्घसूत्रता दोष का दूर होना क्योंकि सहज हो सकता है । इससे निश्चय होता है इस गिरे हुये देश की उन्नति और वृद्धि को अभी बहुत देर है । देश सत्कारकों को उचित है जहाँ बहुत से कुसंस्कार के शोधन की ओर उनका लक्ष्य है वहाँ महाव्याधि समान इस दोष के दूर करने की प्रवृत्ति भी अपने लोगों में दृढ़ करें ।

पशु-पक्षी स्थावर जंगम जीव-जन्तु सभी इस कालातिक्रमण को बचाते हुये समय के अनुकूल चेष्टा करते हैं । जागना, सोना, चुगने को जाना, घोंसला बनाना, अंडे देना आदि अपने काम नियमित समय से कभी इधर-उधर नहीं करते । वृक्षों को देखिये अपने ठीक समय पर

फूलते फतते पत्ते भाड़ते हैं इत्यादि । प्राकृतिक धर्मों पर दृष्टि देने से अनुमान होता है जगदीश्वर को कालातिक्रमण अत्यन्त अप्रिय है । समय पर वेतन पाने वाले कैसे प्रसन्न रहते हैं और कहते हैं हमारा मालिक कैसा खरा देने वाला है और इसके विपरीत समय पर न पाने वाले अपने सेव्य प्रभु की निन्दा करते हैं और काम की ओर से जी छिपाते हैं ।

यह गाथा साधारण समुदाय में विख्यात है कि जिस समय लंकेश रावण का प्राण प्रयाण हो रहा था उस समय लक्ष्मण जी ने उससे जा कर राजनीति का सूत्र पूछा । लंकेश ने पश्चात्ताप के साथ कहा कि पूर्ण नीति-शिक्षा का समय अब न रहा पर सिद्धान्त नीति उसने यही बताया कि कालातिक्रमण से बचना यावत् राजनीति का साराश है । महाभारत में श्रीवेदव्यास जी ने लिखा है:—

“श्व. कार्यमद्य कर्तव्यं पूर्वा ह्ये चापरान्हिकम् ।

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥

जो कार्य कल करना है उसे आज ही करना चाहिये और दूसरी जून का कार्य दिन के पूर्व भाग में भुगताना उचित है क्योंकि मृत्यु यह प्रतीक्षा नहीं करता कि कौन कार्य इसने किया है और कौन नहीं । सच है जिन्हें समय का कदर करना आता है उन्हें क्या नहीं आता । ऐसे लोग जन-समाज में कदर पाय दरिद्र को दूर बहाय सदा सुखी रहते हैं । बुद्धिमानों ने इस विषय पर ग्रंथ रग डाले हैं इसलिये इसे अधिक पल्लवित करना केवल पिष्टपेषण मात्र है । हमारे पाठक जिन्हें सदा नये और टटके प्रस्ताव पढ़ने की टेव पड़ गई है नाक भौं सिकोड़ यही कहेंगे आज हमने कहाँ का राड़ों का सा चर्खा ओटना प्रारंभ किया तो हमारे लिये वह पिष्टपोषण ही मानों दीर्घसूत्रता दोष का सहकारी बन जायगा । अतएव इस प्रस्ताव को यही पर पूरा करते हैं ।

२४—हमारी ललनाओं की शोचनीय दशा

इसमें सन्देह नहीं अंग्रेजी राज्य की कृपा से हम अब वह निरे मिट्टी के लोदा नहीं हैं जो पचास वर्ष पहले रहे। यद्यपि हिन्दुस्तान की परिवर्तन विमुखता अनादि काल से प्रसिद्ध है। हमारे इर्दगिर्द के लोगों में चाहे जो परिवर्तन हुआ हो और आकाश पाताल का अन्तर उनमें आ गया हो पर हमें अपना पुरानापन अपने में से हटाते जैसा अखरता है और असह्य मालूम होता है वैसे कोई दूसरी बात नहीं तो भी काजल की कोठरी के भीतर जाकर दाग न लगने से कोई कहाँ तक बच सकता है। कट्टर परिवर्तन विमुख हम लोगो का सरोकार इस समय उससे आ पड़ा जो क्षण क्षण में नये होते रहते हैं। जो ढग और तर्ज आज उनका है वही कल तक बना रहे तो इससे बढ़कर उब पँदा करनेवाली घिनौनी दूसरी बात जिनको और कुछ हई नहीं तब क्याकर सभव या कि हम इस नये तर्ज की तराश खराश के शौकीन न होते और अपनी पुरानी परिवर्तन विमुखता को जुगये रहते। यद्यपि जो परिवर्तन हमारे में देखा जाता है वह उस तरह का नहीं है जिसे हम वास्तविक परिवर्तन “मेटेरियल चेज” कह सकें और जो हमें स्वच्छन्द या आजाद कौम बनाने के लिए कुछ उपकार कर सके। हाँ, हमारी ललनाओ को शोचनीय दशा में लाने के लिए यह परिवर्तन-विमुखता अलबत्ता गहि के पकड़े हुए है। बाबू साहब छँदान तोट विलाइत की राह सिधारने के लिये कदम उठाये हुए हैं बबुआइन पर बैठी गोबर ही पाथती रही। बाबू साहब, लाला साहब मिस्टर सो ऐन्ड सो कहे जाने की उमग में फूले नहीं समाते ललाइन कौआ हकनी ही रही आई। बाबू साहब आर्य समाजी और ब्रह्मसमाजी है थिथोसोफी में अपना आँवल दरजा कायम करते हैं घर में बहूजी भूतपूजनी समाज की प्रिंसीडेंट हैं। बाहर पंडितजी साहब विधवाविवाह बाल्यविवाह समाजसंशोधन पर

जोश खरोश में भरे नये-नये लेक्चर भाड़ा करते हैं घर में पण्डितजी साहब के पाँच वर्ष की एक कन्या है। पंडिताइन को पानी नहीं पचता। कन्या पाँच वर्ष की हो गई सगाई कहीं पक्की अब तक न हुई। मियाँ के बदन में तनजेब और आबरवाँ भी चुभता है सनहकी तक चाहे बिक जाय पर दस्तरखान में जरदा पोलाव और शीरमाल के प्याले जरूर रहें। घर में बीबी साहबा चक्कियाँ पीस मोटा-भोटा खा किसी तरह दिन काटती है। बाहर बाबू साहब एक ब्रह्म का ज्ञान सिखलाते हैं नेचिरिये बन नास्तिकता की टाँग तोड़ते हैं। घर डफलची गाजी मियाँ की गीत गाया करता है। पाधाजी, पण्डाजी, पुजारीजी, गोसाँईजी, बहूजी को चगुल में फसाय तन-मन धन अर्पन कराय सर्वस्व अपनाय लेते हैं, इत्यादि। अङ्गरेजी राज्य की महिमा से अङ्गरेजी नई सभ्यता का असर हमारी कोई ऐसी बात न बच रही जिस पर न पहुँचा हो। हमारे खयाल, हमारी रहन-सहन बोलचाल, नशिस्त-बरखास्त के तरीके सबों में परिवर्तन पाया जाता है किन्तु हमारी स्त्रियों की दशा में कुछ अन्तर न हुआ। वे पचास वर्ष पहले जिस हालत में रही वैसी ही आज तक है। उन्हें ऐसी हीन दशा में रखने का परिणाम अनेक तरह का क्लेश हम उठा रहे हैं सही पर हमारी आँख नहीं खुलती कि इसके सम्बन्ध में कभी खयाल भी करते हों। बाल्यविवाह आदि समाज की प्रचलित बुराइयों के हटाने के लिए हम हजार तदबीर सोचा करें कभी सफल मनोरथ न होंगे जब तक हमारी मूढ़ ललनाओं के मन में यह बात धसी हुई है कि कन्या आठ वर्ष की बिनब्याही बैठी रहेगी तो सात पुरखे नरक में जाँयेंगे अथवा शीतला भवानी को न पूजेंगी तो लड़को को शीतला भख लेंगी। सनातन से जो होता आया है चाहे उस सर्वनाशकारी सनातन की रीति अब सर्वथा हमारी हानि कर रही है आगे बढ़ने में हमारे रास्ते में एक बड़ा भारी पहाड़ खड़ा हुआ है। हम किसी तरह तरक्की कर ही नहीं सकते जब तक पुरखों की उस सनातन रीति को काला मुँह कर विदा न

करेंगे । पर क्या इमकान कि हम उन रीतों में किंचित् हेर-फेर करने में ज़रा ज़बान डोला सकें । कट्टर “कंसरवेटिव” परिवर्तन विमुख होना इसी का नाम है मक्षिकास्थाने मक्षिका इसी को कहेंगे । बाहर हम कितनी ही तरक्की करें बड़े से बड़ा इमतिहान पास कर उशना और बृहस्पति के प्रतिनिधि हो जाँय स्त्रियों की दशा में जब तक परिवर्तन न होगा कुछ न हो सकेगा ।

जून १८९४

२५—चाटुकार वा मिथ्या प्रशंसा

लाख दुश्मन का खौफ़ तू मत कर ।

गर डरै तो खुशामदी से डर ॥

मिथ्या प्रशंसा जिसका दूसरा पर्याय चाटुकार या खुशामद है दो शब्दों से बना है मिथ्या और प्रशंसा । प्रशंसा इसे नहीं कहते कि जो गुण आपमें नहीं है उसका आरोप आपमें कर दिखाना । आरोप के माने ही यह है कि जहाँ जो वस्तु न हो वहाँ या उसमें उसे प्रगट कर दिखावें । तो निश्चय हुआ कि आरोप सदा भूठ और मिथ्या होता है । प्रशंसा निस्सन्देह अच्छी बात है किन्तु जब वह लाभ आदि के कारण या स्वार्थ-साधन के मूल पर की गई तब कपट भाव मिश्रित हो बुरी हो गई और इस प्रकार की प्रशंसा का मिथ्या प्रशंसा नाम रख दिया गया । आप अपने पेट के कारण अथवा अपना स्वार्थ निकालने को दूसरे की भूठी तारीफ़ कर अपना मतलब गाँठिये हम फिर भी कभी उसे बुरा न कहेंगे । यह अत्यन्त निन्दनीय और कुत्सित तो तब है कि जब आप अपनी मिथ्या प्रशंसा पर जोर पहुँचाने को या अपने वाक्चापल्य से दूसरे के सच्चे और वास्तविक गुण को छिपाते हैं । हम नहीं जानते इस महापाप का आयश्चित क्या है या इस पाप की गठरी का बोझ क्यों कर हलका हो सकता है ।

अब देखना चाहिये प्रशंसा कहाँ तक लोगों को मीठी और प्यारी है । कौन ऐसा मनुष्य है जिसे अपनी प्रशंसा सुनने को जी न ललक उठता हो । संसार में बहुत से अच्छे-अच्छे काम इसी के लिये किये जाते हैं कि जग में हमारा मुँह उजागर रहे आदमी की जिन्दगी में यह जीवन मूल है । एक बड़ा लाभ इससे यह है कि जो प्रशंसा पाने की फिकिर में लगे रहते हैं वे बदनामी से अवश्य बचते हैं । नहीं तो दुनिया का कुछ ऐसा बेढब डोल और

नाजुक कारखाना है कि यदि हम भलाई न करें तो बुराई कहीं ढूँढ़ना नहीं पड़ता। जैसे एक बड़ी उम्दा बाग हो जिसकी धरती अत्यन्त उपजाऊ और उर्बरा है पर यदि हम उसमें मीठे फल और सुगन्धित फूलों के बीज न बोये तो लम्बी-लम्बी घासे आप से आप उग आती हैं पर इस प्रशंसा से हमारा प्रयोजन सच्ची प्रशंसा का है क्योंकि मिथ्या प्रशंसा व्यंग्यरूप में एक प्रकार की बदनामी ही है और जो लोग बदनाम हैं वही भूठी-भूठी प्रशंसा से नेकनाम हुआ चाहते हैं। मिथ्या प्रशंसा को ऐसा बिगाड़ देता है जैसे सिरका दूध को, नोन हलुवे को। जब दो वस्तुओं का मेल होता है तो जो अधिक बलवान होती है वही दूसरे पर प्रबल हो जाती है। ऐसे ही यहाँ मिथ्या शब्द है जिसने प्रशंसा को बिल्कुल बिगाड़ डाला और मिथ्या ही मुख्य रहा प्रशंसा सर्वथा बाधित हो गई।

अब इस प्रशंसा के ढर्रे में मिथ्या बोलने के कई हेतु हैं। १ डर, २ अपना फायदा, ३ इज्जत और नामवरी, ४ हास्यार्थ, ५ दिल बहलाव, ६ स्वभाव। डर से जैसे एक अन्यायी राजा। जो उसके अन्याय पर सर्वथा कुदा जाता है। एक बात उसमें नहीं पाते कि जिसके लिये उसकी तारीफ करें किन्तु उसके अन्याय और जुल्म से जो डरता है कि कहीं ऐसा न हो कि सच बात कह देने से हमारा कुछ अनिष्ट हो। ठकुर सोहाती और भूठी प्रशंसा कर किसी तरह अपनी जान छुड़ाते हैं। अपना फायदा जैसे खुशामदी टट्टू या अमीरो के खिलौने खुशमसखरे लोग बड़े आदमी और अमीरो को अनेक तरह की भूठी-भूठी तारीफ और चाटुकार से हँसाय खेलाय अपना मतलब गाँठते हैं। कवि या भाट, भाँड़, भगतिये, शायर इत्यादि जो अपनी सखुन आराई से कहो राई को पर्वत बना दें और पर्वत को राई कर डालें। दूसरे धूर्त और वंचक जो सच्ची राह और सच्ची बात न बतला उस गुमराह के साथ मिल बजते हैं और निरे उल्लू काठ के पुतले को बढ़ावा दै-दै जब तक किञ्चित मात्र रस पाते हैं मछेव के छाते के भाँत लिपटे रहते हैं अन्त को उसे खन्दक में भोंक आप अलग हो जाते हैं। रही इज्जत सो भूठी तारीफ से जो इज्जत मिली उसमें कुछ स्थिरता या कायम नहीं, उधर जाने पर दो

गुनी बदनामी होती है। हँसी व दिल बहलाव के लिये जो मिथ्या प्रशंसा है वह सभी जानते हैं कि वह प्रशंसा नहीं है किन्तु खुशमस्खरों का एक लटका है इसलिये उसे हम बहुत दोषी भी नहीं ठहरा सकते। जिनका स्वभाव ही मिथ्या प्रशंसा और एक बात में चार बात मिलाकर बोलने का है उन्हीं को हम खुशामदी कहते हैं। ऐसों से सदा चौकस रहना चाहिये।

अब देखना चाहिये कहाँ तक यह मिथ्या प्रशंसा पल्लवित की गई है। पुराने कवियों के वाक्य और कल्पनाओं को देखिये तो इस अत्युक्ति और मिथ्या प्रशंसा को कहाँ तक स्थान दिया गया है कि जिन्हें पहले के लोग प्रत्यक्ष सच समझ मजहबी और धर्म सम्बन्धी बात मान बैठे थे उन पर इन दिनों के नये विद्वान् और शिक्षित समाज वाले हँसते हैं और निरी बेबुनियाद बात मानते हैं। कवियों ने इस अत्युक्ति को कहाँ तक जोर दिया और बढ़ाया कि काल को रावण के सेज की पाटी में बाँधा। पवन, और पावक आदि प्राकृतिक पदार्थों को भी उसके घर का गुलाम बना दिया, इत्यादि। और भी कविता के जोर में आय चाँद को जमीन पर ला पटका और पृथ्वी के कीड़े मनुष्यों को आसमान के सातवें तबक में चढ़ा दिया, जिसमें दो गुण पाये उसमें चार दिखलाये, गुण को दोष और दोष को गुण बतलाया, जिसका फल यह हुआ कि पुराने समय का हाल जो केवल प्राचीन लेख के द्वारा मालूम हो सकता है अत्यन्त संदिग्ध रहा और ठीक-ठीक पता किसी बात का न लगा। लोगो को यह कहने का अलबत्ता हो गया कि यही तो कवियों की कार्रवाई है।

बहुत से लोगों का मत है कि यह अलङ्कारिक वर्णन है केवल ऊपर ही ऊपर देखने से दोषयुक्त प्रतीत होता है। अच्छा अधिकारी जब उसमें पँठ कर देखता है तो सब ठीक-ठीक हाल मालूम कर सकता है और इस अर्थवाद के समझने की व्युत्पत्ति मीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने से होती है तब जो कुछ भ्रम साधारण बुद्धि वालों का है वह अर्थवाद के द्वारा

सब दूर हो सकता है इसलिये हम उसे चाटुकार वा मिथ्या प्रशंसा नहीं कह सकते। ग्रंथकर्ताओं ने अधिकारी परत्व की दृष्टि से दूसरों के समझने की इसे एक युक्ति रखा है। अस्तु, धर्मग्रन्थों में भी इतनी अद्भुत बातें भरी हैं कि कही सचाई का ठिकाना न रहा, दूसरे के धर्म को यहाँ तक बुरा दिखलाया कि कुछ भी उनमें भली बात न रहने दिया जिसका नतीजा यह हुआ कि जब हमें दूसरे के धर्मग्रन्थ की कोई अच्छी बात मिली जिसे हम अपने यहाँ नहीं पाते तब हमने उन पुराने लेखों को बिल्कुल झूठा मान लिया। राजकाज में लगे हुए मनुष्यों को देखिये लोगो ने उन्हें यहाँ तक सिर चढ़ाया कि वे अपने को भूल गए और ऐसे-ऐसे कामों का साहस करने लगे जो उनकी सामर्थ्य के बिल्कुल बाहर था और उन्होंने भी ऐसे-ऐसे कामों का साहस केवल इसलिये किया कि आजमावें तो सही जैसा दूसरे लोगो ने उनकी प्रशंसा कर उन्हें बढ़ाया वह ठीक है या नहीं।

पालियामेन्ट मे कई महाशय ऐसे हैं जो केवल लोगों की मिथ्या प्रशंसा और बढ़ावे से उस काम में तत्पर हो जाते हैं जिसके पूरा करने की ताकत वे अपने में नहीं रखते और अन्त में अकृत कार्य हो भरे मुँह नीचे गिरते हैं। परीक्षोत्तीर्ण हमारे बी० ए० एम० ए० आदि अपने साथी और सहपाठियों की मिथ्या प्रशंसा में आय अहम्भाव की मूर्ति बन बैठते हैं। अपने अकिल के मुकाबले अरस्तु, सुकरात और प्लेटो की बुद्धि और फिनासफी को हेय और तुच्छ समझ राजनीतिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक बड़े-बड़े सिद्धान्तों के परमाचार्य बनते हैं किन्तु यह सब तभी तक जब तक संसार सागर की पेचीदा तरंगों में नहीं पड़ते। कालेज कंपौड के भीतर ही भीतर बर्बाद किये बाहर निकलते ही एक साधारण क्लर्क या राइटर में भी वे सब “प्रेक्टिकल” कार्रवाई बातें देख जो उनके बलन्द खयाल में कभी आई भी न थी लजाते और खिजाते हैं। कहाँ ऊँचे दरजों की मेथीमेटिक पिये हुये इंजीनियर बनने के इम्तिहान की तयारी में थे कहाँ यहाँ एक साधारण बुकिङ्ग क्लर्क की-सी लियाकत भी

हिसाब किताब समझने की अपने में न पाय पस्तहिम्मत बन बैठते हैं । कालेज में जब थे गंभीर से गंभीर विषयों पर 'ऐसे' लेख लिखते थे और अपनी प्रशंसा करने वालों के बीच अद्वितीय विद्वान प्रसिद्ध थे यहाँ कार्य की प्रणाली में पड़ एक साधारण सौदागर के फर्म की बिल बनाने का शहर अपने में न पाय मन ही मन पछताते हैं । सच है—

“यदा किञ्चित् किञ्चित् बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।”

पुराने इतिहासकारों को लीजिये तो इसी चाटुकार ने दुर्योधन, कंस, जरासन्ध आदि को कहाँ तक बढ़ाया कि वे अधर्म को धर्म समझने लगे और उनसे ऐसे-ऐसे काम कराया कि जड़ पेड़ समेत इस दुनिया से उजड़ ही गये । जयचन्द और पृथ्वीराज में परस्पर फूट की सहायक भी यही थी । औरङ्गजेब के दरबार में तास्मुबी मुसलमानों के बीच यह इतना मान पाये हुये थी और औरङ्गजेब से ऐसे-ऐसे काम कराये कि हिन्दू मात्र का जी मुगलानी सल्तनत की ओर से फिर गया और दिल्ली की बादशाहत के नेस्तनाबूद होने का वाइस हुई ।

अब दूकानदारों को देखिये बहुत कम ऐसे हैं जो अपनी चीजों का गुण-ऐगुण ठीक-ठीक बताते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि खरीदनेवाले को ठीक पता नहीं लगता । कभी-कभी ऐसा होता है कि झूठे दूकानदारों के खरे अच्छे माल में भी मोल लेनेवाले को खटका पैदा हो जाती है । यह मिथ्या प्रशंसा हमारे पत्रसपादकों को भी अपने चंगुल में किये है । आदि में किसी से माँगनी माँग या आप ही बहुत कुछ दिमाग पचाय दो एक चटकीले लेख लिख फिर वही विविध और विज्ञापन भरती कर एडीटरी की टाँग तोड़ने लगते हैं और टाइल पेज में जगत भर की विद्या, विज्ञान, हास्य, परिहास, इतिहास सब बातें जितनी उन्हें ढूँढने से मिली लिख दिया, जिस प्रतिज्ञा को कभी साल भर में भी एक बार पूरा न कर सके । उनके रद्दी पत्रों के ग्राहक

जो न बढ़े तो पढ़ने वालों की निन्दा और शिकायत अलबत्ता करने लगते हैं पर अपने लच्छन पर कभी एक बार भी ध्यान नहीं देते कि लेख में लालित्य आना एक ओर रहे शुद्ध शब्द भी लिख या बोल नहीं सकते पर एडीटरी का हौसिला भर पूर रखते हैं ।

हमारे देश के अपठ धनियों को रिझाने तथा उनसे अपना कुछ प्रयोजन सिद्ध करने का केवल चाटुकार ही एक द्वार है ठकुर सोहाती कहते जाइये आप बड़े सत्पात्र और योग्य समझे जायेंगे और जो कहीं उनकी दो चार भूठी तारीफ कर उनके मुकाबले दूसरो की बुराई और निन्दा कीजिये तब तो मानो आपके समान दूसरा ऐसा सच्चा और साफ कहने वाला कोई हई नहीं । बाणभट्ट ने कादम्बरी में एक जगह ऐसों का बहुत उत्तम वर्णन किया है—“उसी से प्रेम करते है, उसी से ललक कर बोलते है, उसी को अपने पास बैठाते है, उसी को बढ़ाते हैं, उसी के साथ सुख का अनुभव करते है, उसको देते है, उसी को अपना मित्र बनाते है, उसी की बात मानते है, उसी का विश्वास करते है जो रातदिन प्रतिक्षण और सब कामकाज छोड़ हाथ जोड़े सामने खड़ा रहता है और देवता के समान इनकी स्तुति किया करता है ।”

इन दुर्विनीत मदान्धों को इसका कुछ ज्ञान ही नहीं है कि हमें सब लोग हँस रहे है और वे खुशामदी हमें ठगने के लिये हमारी भूठी तारीफ से हमें रिझाते है । अस्तु, अब इस भुठाई को जितना ही पल्लिवित करते जायेंगे लेख उतना ही अधिक नीरस और रूखा होता जायगा । इससे इसे यहाँ ही समाप्त करते है पर इतना अलबत्ता सूचित किये देते है कि आप लोग उन कुटिल कपटी स्वार्थरत खुशामदियों से सदा बचते रहिये जिनके स्वरूप का परिचय दिलाने को आज हमने इतना समय आपका नष्ट किया । चाटुकारी का चस्का पड़ जाना अच्छा नहीं । आगे आपकी इच्छा ।

२६—दान की जुदी-जुदी प्रणाली

नई सम्यता हमारी हर एक बातों में टाँग अड़ाती हुई दान के क्रम को भी उसने न छोड़ा। पुराने क्रम के लोग दान इस शब्द को सुनते ही समझ लेते हैं कि कुशा और जल हाथ में ले किसी ब्राह्मण देवता का श्रद्धा-पूर्वक पाँव धो तिलक चन्दन माला फूल से विधिवत उसकी पूजा कर अति दण्डायमान सकला पढ़कर जो दिया जाय वह दान है। उस बेचारे को यह क्या मालूम कि नये क्रम से उस भाँत कुछ देना निरादकोसला, हँसी की बात दंभ और निष्फल तथा व्यर्थ है। अब इस नई सम्यता में अब तो दान उसी को कहेंगे जो चन्दे में दिया जाता है; वह चन्दा सरकार की किसी बात को हो तो बहुत अच्छा क्योंकि गवर्नमेंट के यहाँ सुखरू हाकिमों की खुशनुदी और अन्त में दो एक हर्फ की उपाधि की प्राप्ति उस दान का सद्यः फल मिल जाना सुलभ हो जाता है। इस तरह का दान तो महादान है। उपदान में यह भी सही कि किसी ने कोई देशहितैषी काम में आय गला दबाया तो लाचार हो नाक-भौ सिकोड़ते उम में कुछ भी लिख देना पड़ा; पर निश्चय रखो यह दान उस किस्म का नहीं है जिसका सद्यः कोई महाफल मिले न कर्मचारियों के चित्त में ऐसे दानी की उदारता का कुछ असर पहुँचता है। हाँ, समाचार पत्र वाले अलबत्ता बन में मोर नाचने के समान गा उठते हैं और कालम के कानम झूठी सच्ची तारीफ से भर देते हैं। लूले लँगड़े अर्धे अपाहिजों को देना भी नई सम्यता दान मानती है; दान का नया क्रम क्या है सो तो हमने कह सुनाया अब पुराने क्रम में दान की जो कुछ फजीहत है उसे भी कहते हैं।

अपने दान से संसार में हम प्रसिद्ध हो रहे हैं। हमारे समान दानशील और उदार कौन होगा; जिसके द्वार से आज तक मँगता विमुख हो गया ही नहीं; कंगाल परम दरिद्र के मन की अभिलाषा पुरे देने को

हम मानो कल्पवृक्ष हैं। अहंकार से भरे हुए इस तरह के दान को दर्पदान कहेंगे और इसका क्या फल है सो हमारे पाठक अनुमान कर लें। संसार में हमारा यश फैले हम बड़े उदार और दानी कहलावें इस ख्याल से अपनी तारीफ पर रीझ कुछ देना मानो धन दें यश खरीदना है। दान काहे को हुआ वित्त और यश का क्रय-विक्रय है। अभाग्यवश जबान से कही निकल गया कि तुमको यह वस्तु देगे; मंगता अर्थी यह समझ कि कह चुके हैं तो देहीगे दरबारदारी करते करते और दीनता की मुद्रा से माँगते-माँगते थक गया और इतना घेरा कि लाचार हो देना पड़ा। दान क्या याचक को भीख का देना है जिस दान का समावेश ब्राह्मणों ने अपनी पोथियों में अधम के नाम से किया है।

“अधमं याच्यमानं स्यात्”

मँगता आशाबद्ध हो दिन रात सेवा-टहल करते करते घिस गया और देने वाले ने सोचा दान का दान और एहसान का एहसान है। उस निष्फल सेवा दान से क्या।

“सेवादानं च निष्फलम्”

एक दान कट्टर सूम का होता है जिसमें झूठी भक्ति तो बहुत प्रगट की जाती है पर लेने देने में केवल राम का नाम मात्र, बहुत बड़ा आडम्बर रच माला फूल तिलक बड़ी भक्ति से लगाय अति विनीत भाव से ऐसा झुक के साष्टांग दण्डवत की कि प्रतिग्रह लेने वाले ने यही समझा कि बस अब हम सदा के लिये अयाचक हुआ चाहते हैं। आज हमको पुनः प्रतिग्रह लेने का पाप न लादना होगा पर अंत को जहाँ रुपये और अशरफियों की आशा थी वहाँ कांकिणी हाथ लगी तब मुँह बाय कहने लगे पराये पूत से पैसा निकालना बड़ा कठिन काम है। दानपत्र के दो कैंडिडेट हैं जिन दोनों में दान लेने की एक सी योग्यता है न चावल भर एक घट के न दूसरा चावल भर बड़ के है। पर दानी कुछ ऐसा ईर्ष्यालु राग-द्वेषपूर्ण है कि जिससे उसे प्रेम है उसका अपने दान से घर भर दिया और जिससे द्वेष

है उसको नितान्त आशा भंग होना पड़ा। दान क्या है राग और द्वेष के प्रगट करने का इशितहार है ; एक बन्ध्य दान भी है—

“मुई बछिया ब्राह्मण के हेत”

इस कहावत के अनुसार जिसे समझा कि यह अब हमारे किसी काम का न रहा किसी को दै निहोरा और एहसान क्यों न लें।

“एकाक्रिया छयर्थ करी प्रसिद्धा”

पुण्य का पुण्य एहसान खेलौना मे। लेने वाले ने भी समझा दान की बछिया के दाँत नहीं देखना होता।

“भागे भूत की लगेटी ही सही”

ऊसर में अच्छे बीज फेंक देने के समान एक दान वह है कि दानी को न श्रद्धा है न भक्ति अनेक झिड़की और घुड़की के साथ दानपात्र का बड़ा अनादर करते दिया थोड़ा, कहा बहुत। यथार्थ मे जिसे दान कहते हैं वह यह है—

“परार्ति शमनं वित्तमज्ञातमनुदीरितम् ।

अफलाकाक्षयायुक्त प्रयात्यल्पमनल्पताम् ॥”

जो धन दूसरे की पीड़ा दूर करने को दिया जाय और जिसका दान यहाँ तक गुप्त हो कि कोई न जाने; फल की वासना या किसी तरह की कांक्षा न रख दिया जाय ऐसा थोड़ा भी दिया गया बहुत असंख्य है। या इसे दान कहते हैं कि देश काल पात्र जो दान के क्रम में गिनाये गए हैं उनका किंचिन्मात्र खयाल न कर किसी दुखी को दीन दशा में देख उसकी दीनता दूर करने को दिया जाय; निस्संदेह यह बड़ा श्रेष्ठ दान है।

एक दान यह है कि चाहे केवल मूठीभर अन्न हो किन्तु फलाभिसंधि का उसमें अंत नहीं कितनी बढ़ा दी जाती है तद्यथा—

“ममेहजन्मनि जन्मान्तरेवा सकलदुरितक्षयनिरसन तथा च पुत्र-
पौत्रादि वृद्धिपूर्वक सकुटुम्बपरिवारस्य आयुरारोग्यसमस्ताभ्युदयवृद्धये”
इत्यादि ।

फल की आकांक्षा रख मेरुतुल्य दान भी तृण समान है । श्रद्धा सुधा
पूरित हो किसी दुखी को दुखित दशा में देख दया का भाव मन में लाय
तृण तुल्य भी कुछ देना स्वर्ण पर्वत के दान सदृश है । स्वस्ति वाचन
और शान्ति पाठ करने वाले पुरोहित गुरु या आचार्य को जो देना है वह
एक प्रकार का भूतिदान अर्थात् उनके मजदूरी का वेतन है इत्यादि ।
दान के प्रकरण में पुरानी और नये क्रम की जो कुछ प्रणाली है दोनों
को हमने दिखलाय दर्पण सदृश कर दिया अब कौन प्रकार का दान अच्छा
है सो पाठकवृन्द तय कर लें ।

अप्रैल १९०१

२७---मांसभक्षण

मांसाशन और मांसाशननिषेध दोनों पक्ष शास्त्र में पाया जाता है जैसा कि 'हिन्दीप्रदीप' के पूर्वाङ्क में प्रकाशित किया जा चुका है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि मांसभक्षियों के दल की प्रबलता पूर्वकाल से आज तक लगातार बढ़ती हुई पाई जाती है। समीचीन इतिहास और पुराणों से स्पष्ट है कि पूर्वकाल के दैत्यदानव, अमुरगणों के जीवन आधार की मुख्यता मद्यमांस ही के ऊपर थी। जैसा कि बाल्मीकीय रामायण सुन्दरकांड में लिखा है कि श्री रामदूत हनुमान जी जिस राजभवन किम्वा मन्त्रिभवन में जाते थे मद्यमांस ही का उपचार अधिक देखते थे। वन्यहिंसक जन्तु समान राक्षसगण कोई मांसमात्र नहीं छोड़ते थे जैसा कि अन्तिम कवि तुलसीदास ने लिखा है—

“खर महिष मानव धेनु खच्चर गो निशाचर भक्ष ही।

यह लागि तुलसीदास इनकी कथा सक्षेपहि कही ॥

पूर्वकाल में भी केवल यही बात न थी कि राक्षसों के समान सब मनुष्य मांसभक्षी रहे हो या दैत्यों, असुरों के व्यतिरेक सब निरामिषासी न थे सो नहीं। पूर्वकाल के क्षत्रिय लोग मांस खाने थे यह बात बाल्मीकीय रामायण और महाभारत की कथाओं से स्पष्ट विदित होती है। महाभारत में यह भी लिखा है कि जब राजा युधिष्ठिर वनवास करते थे उस समय उनके यहाँ सहस्रो स्नातक ब्राह्मण भोजन करते थे वे क्या खाते थे? पूड़ी कचौड़ी जलेबी अमिरती तो वहाँ मिल नहीं सकती थी केवल वही आखेट किये हुये हरिणादि पशुओं का मांस और यत्किञ्चित् प्राप्त कन्दमूल फलादि। अन्नादि पदार्थ तो वहाँ मिल ही नहीं सकता था। इसके सिवाय मांस के पिण्डदान का विधान भी शास्त्र में पाया जाता है। सो इसलिये कि जब पूर्वकाल में खेती की आरम्भावस्था में अन्न दुर्लभप्राय था प्रजा के प्राण की रक्षा और यज्ञादि

कृत्य की रक्षा बहुत आवश्यक बात थी तो उस समय के सात्त्विक प्रकृति दयालु लोग अपनी देवपितृक्रिया को अन्ताभाव में कन्दमूल फलादि के द्वारा निवृत्त करते थे और राजस तामस प्रकृति वाले अपनी रुचि के अनुकूल मांस का वर्त्ताव करते थे। किसी समय थोड़े से मांसाहारियों के होने से यह न समझना चाहिये कि अमुक समय या युग या शताब्दी में मांसाहारी लोग अधिक थे। अच्छे-अच्छे दयालु विवेकसम्पन्न महर्षि लोग हिंसामूलक मांससेवन और प्रमादमूलक मद्यपान से सदैव घृणा करते थे और अच्छे शिष्ट विज्ञानशील उक्त पदार्थों के सेवन से बराबर बचाव करते आते हैं।

यदि पूर्वकाल के दूरदर्शी महर्षिगण अपनी दयालुता और सर्वज्ञता से मांसभक्षण का निषेध स्तम्भ न स्थापन करते तो पूर्वकाल में जब खेती करने की विद्या का प्रचार न था अल्प प्राय और प्राणरक्षक-मात्र मांसभक्षण का यह कम अधिक बढ़ने से इतना बिगड़ जाता कि मांसभक्षी मनुष्यों और राक्षसों में कुछ अन्तर न रह जाता और भक्ष्य पशुओं के समुदाय के विमेष होने से ऐसे उपकारी पशुओं का दल कहीं दृष्टिगोचर न होता जिसके कारण भारतवर्ष रसगोरस का अखण्ड समुद्र बना हुआ था जो अब भी इस अन्तिम सहस्राब्दी में मांसभोजियों की उत्तरोत्तर वृद्धि के दोष से एक छोटा-सा कुण्ड जान पड़ने लगा और यह नहीं कहा जा सकता कि रसगोरस के प्रकरण में ह्रास किस अन्तिम सीमा को पहुँचेगा। अच्छे तार्किक विद्वान् इस अनुमान से विरुद्ध मत नहीं हो सकते कि यदि मद्य मांस के लोलुप मनुष्यों की चाट उक्त पदार्थों में अत्यन्त बढ़ जाय और किसी कारण से उन मध्म और भक्ष्य पदार्थों की दुर्लभता और अलभ्यता की अवस्था आ जाय तो निस्सन्देह उनकी निरङ्कुश चाट और दुनिवार लोलुपता उन्हें अमध्म और भक्ष्य पदार्थों की लालसा गर्त में ढकेलेगी। जैसे चीन और ब्रह्मा देश के मनुष्यों में अब भी पाया जाता है कि कुत्ता बिल्ली तक नहीं बचने पाते। बुद्धि प्रद्योतक शास्त्र और शिक्षा-

नुलब्ध सभ्यता चाहे जो कुछ बचाव करे नहीं तो इस मद्य माँसाशन की प्रगाढ़ रुचि सामर्थ्य भर अच्छे सुशील प्रकृति मनुष्यों को भी राक्षसाचार के सीखने और असभ्यभाव धारण में बाधित करेगी। प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता, हमारे शासक महाप्रभु अङ्गरेज तथा उनके चेले नई रोशनी वाले हिन्दुस्तानी या बाबू लोग इसके उदाहरण मौजूद हैं। कौन इसे न मानेगा कि प्रद्योत और विद्वत्ता में इनका औवल दरजा है किन्तु पानदोष इन्हें नष्ट कर रहा है और यही एक ऐसा दोष है जो किसी समय इनको बड़ी ही हानि पहुँचायेगा और कमजोरी का बाइस होगा। यदि इसी भारतवर्ष में जैनमतावलम्बियों और हिंसाविमुख वैदिक धर्मियों का समुदाय न होता तो आज छागमेषादि भक्ष्यपशुओं का घटता हुआ वर्तमान स्वल्पदल भी न दिखाई पड़ता।

जिस महाभारत की कथा में मांसभक्षण का प्रमाण पाया जाता है उसी में यह भी लिखा है कि भक्ष्य पशु या पक्षी के पुरुष सज्जक (नर) का मांस खाना और स्त्रीसज्जक अर्थात् मादे का नहीं। उस समय के मांसभक्षियों को भी देश प्रबन्ध और लोकस्थिति के लिये इस बात का डर लगा हुआ था कि यदि भक्ष्य पशु पक्षियों की स्त्री जाति का बधबन्धन प्रचलित हो जायगा तो थोड़े ही कालान्तर में न केवल पशुपक्षियों का प्रलय कल्प और मांस का अनिवार्य दुर्भिक्ष उदय होगा किन्तु बहुत सा लौकिक प्रबन्ध के बिगड़ने से मनुष्यों के लिये अत्यन्त हानि हो जायगी। जैसा कि इस समय देखा जाता है कि चालीस पचास वर्ष पहले देहातो में भेड़ों और बकरियों का भुण्ड हजारों के हिसाब से दिन को जंगलों में चरा करता था रात में खेतियों के खेत में बैठता था एक एक रात में सैकड़ों हजारों बीघा खेत उनके मलमूत्र की खाद पाँस से अन्यन्त बलवान् हो जाता था। यही कारण था कि आगे बीस मन पचीस मन की उपज होती थी सो उन भेड़ बकरियों का भुण्ड क्षीण होते होते अब सहस्र की जगह सौ पचास के हिसाब से चलता है। किसी को

बकरी भेड़ी की खाद पाँस नहीं मिल सकती, बहुत हुआ तो ऊख वाले वा धान वाले अधिक खर्च देकर उन्हें कई रात अपने खेत में बैठवाते हैं। कारण यही कि मांसभक्षियों ने उक्त पशु समुदाय को खा डाला और मादा जाति को भी खा डाला नहीं तो उनका दल भी न घटता और मास भी खाते जैसे कि भारतवर्ष के मांसभक्षियों का क्रम था कि नर पशु का मास खाते थे मादे का नहीं। यही विधि वेद और तन्त्र क्रिया में लिखी है जहाँ तक बलिप्रदान के विन्ध्येश्वरी प्रभृति देव स्थान है वहाँ सर्वत्र बकरे भेड़े का बलिप्रदान होता है। बकरी भेड़ी नहीं मारी जाती और जितने सच्चे हिन्दू राजा और क्षत्रिय राजपूत मासभक्षी हैं वे नरसजक भक्ष्य पशु को खाते हैं। और और राजनीति के विषय में चाहे हिन्दू अल्पज्ञ कहे जाँय पर इस विषय में उनका मुकाबिला करने वाला कोई नहीं है। सोचने की बात है कि यदि हिन्दुओं के धर्मशास्त्र और स्मृतिमूलक रीति अब तक बनी होती तो वहाँ भेड़े बकरे का मास जो अब अत्यन्त महंगा और दुर्लभ प्राय हो गया है साग तकारी के भाव बिकता और उक्त पशु दल की सख्या न घटती। साल में बकरियाँ दो बार बच्चे देती हैं यदि सौ बकरियाँ न मारी जाँय तो पाँच सौ बच्चे एक साल में दे सकती हैं जिनमें से नरसजक बच्चे मासाहारियों के बर्ताव में आते उनकी मादा जिन्हें अदूरदर्शी समुदाय के लोग खा डालते हैं वे मानो पाँच छः सौ उक्त खादित बकरियों के पुत्र-पुत्री और उनके भविष्य पौत्र पौत्री और प्रपौत्र प्रपौत्री का सहार कर डालते हैं। इस तरह पर उनके वृहत् दल का नित्य-नित्य उच्छेद होता जाता है। क्योंकि यदि सौ बकरियाँ और भेड़ों में एक साँड़ बकरा या भेड़ा वीर्य प्रदान के लिये रक्षित रहेगा तो बारी-बारी उन सबों किम्बा उनसे अधिक बकरियों और भेड़ियों में गर्भाधान कर सकेगा।

हम निन्दा नहीं करते किन्तु यह यथार्थ बात है कि हिन्दू जाति को पराजित और हीन दशा में जान आजकल के कानून कर्ता लोग उनके पुरखों के विचाररत्न को भी तुच्छ समझते हैं जिसका परिणाम यह देख

पड़ता है कि उनके अधिकृत और हस्तगत राज्य की समृद्धि और धरती की उपजाऊ शक्ति इन पशुओं की क्षीणता से लय को प्राप्त होती जाती है। हमारे बौद्ध और जैन संप्रदायवालों ने इन्हीं बातों को ध्यान में रख मांस-भोजन को सर्वथा निषेध किया। राजकीय सम्बन्धी और-और विषयों में चाहे वे पूर्ण अभिज्ञ न भी रहे हो किन्तु धरती को किस तरह उर्वरा कर सकें और धरती की उपजाऊ शक्ति अधिक हो कर राज्य तथा राज्य की प्रजा को क्या लाभ पहुँचा सकती है इन सब बातों में वे लोग पूर्ण पण्डित थे। मुसलमान हमारे देश के शासनकर्ता और उनका हमारे देश में इतना बढ़ जाना जहाँ हमारी और सब बातों को छार में मिलाया वहाँ मादा जाति के पशुओं के भोजन की प्रथा भी बड़ी ही हानिकारक हुई। अंगरेजी राज्य जैसा हमें लाभ पहुँचा रहा है वैसा ही मुसलमानों की सत्तानत से हमारा सत्यानाश भी हुआ और अब तक होता ही जाता है। कर्मचारी गण भी इनको सरहग समझ इन्हीं के मन की बहुधा कर गुजरते हैं। हिन्दू कुछ अपनी सिध्दाई से कुछ इज्जत हुरमत बचाये रखने के ख्याल से कुछ डर और अपनी कमजोरी देख दब निकलते हैं और अन्त को परिणाम यह होता है कि इन्हीं के माथे बिसाती है और यही पीसे जाते हैं। अस्तु, इन सब अप्रासंगिक बातों की यहाँ पर चर्चा व्यर्थ है। प्रकरण मांसभोजन के गुण दोष के विचार का है जिसका निचोड़ हम फिर भी यही तय करते हैं कि हमारी सामाजिक तथा धर्मसम्बन्धी उन्नति सर्वथा मांसभोजन से सुसाध्य है किन्तु शारीरिक बल तथा और-और राजकीय विषयों में हम आगे बढ़ा चाहे तो मांसभोजन के निषेध की ओर से कान मूँद ले और इसका निषेध करने वालों की एक बात भी न सुने निःशंक इसके भोजन में प्रवृत्त हो।

जून १८९८

२८—हाड़ की उत्तमता

पहले किसी समय कुलीनता और श्रेष्ठता श्रेष्ठ कर्म के आधीन थी। स्वच्छ आचरण, चरित्र की पवित्रता, उत्तम श्रेणी की विद्या, ऊँचे दरजे की लियाकत, किसी कदर धन का पास होना भी कुलीनता और आभिजात्य की पहचान थी। बुरा काम करने वाला ऊँचे कुल का भी नीच कर दिया जाता था। समाज के लोग कोई उसे आदर न देते थे। अब हमारी अवनति के समय जब हम सब तरह पर बिगड़ गये हैं जब कि एक भी ऐसे न बच रहे कि अपने में चरित्र की पवित्रता का दावा कर सकें। इस दशा में कि

“न तुम कहो हमारी न हम कहै तुम्हारी”

हाड़ की उत्तमता के घमण्ड में भर ग्राम कुक्कुर सदृश एक दूसरे के मुकाबिले काम पड़ने पर भूकने और गुराने लगते हैं। वर्षों की जमी हुई मन की मैल ईर्ष्या द्रोह या किसी दूसरे प्रकार का चित्त में वैमनस्य का बुखार निकालने का यही तो एक मौका मिलता है कि काम पड़ने पर अपने एक भाई को कह डालें कि तुम नीच हो, जाति में हेठे हो, रर्रा हो, षट्कुल में नहीं हो, न तीन में हो, न तेरह में, तुम्हारे साथ हम न खाँयेंगे हमारा धर्म जाता रहेगा, नमस्कार ऐसे धर्म को, गाज पड़े ऐसी समझ पर, ऐसे भगोड़े धर्म को हम कब तब बाँध कर जकड़-बन्ध किये रहेंगे जो थोड़े थोड़े में भागा करता है। बाज़ार की मिठाई दाँत तले दबा लिया धर्म धूर में मिल गया अन्य जाति के लोटे में पानी पी लिया भ्रष्ट हो गये। वेश्या संसर्ग दूषित हो, दासी गमन करते हों, दिवाला निकाल दूसरे की रकम मार बैठे हों धर्म कभी न बिगड़ेगा। बेईमानी, फरेब, जालसाजी, भूठ बोलना, अपने थोड़े से स्वार्थ के लिये दूसरे का सत्यानाश कर देना इत्यादि बातों में धर्म का कहीं ज़िकिर भी नहीं।

सब ओर से सिकुड़-सिकुड़ाया हिन्दू धर्म अब रसना इन्द्री में आ टिक रहा है जिसका प्रादुर्भाव पूर्ण रीति पर अभी देखने में आता है जब हाड़ की उत्तमता प्रगट करने का कभी कोई काम पड़ता है। सिवाय दंभ और भेद बुद्धि के सह भोजन की बाधक इस समय की खान पान की प्रणाली में और क्या भूल है। इसमें क्या बुराई है कि पञ्चद्विड़ ब्राह्मणों की तरह यहाँ के पञ्चगौड़ मात्र का सहभोजन होने लगे। क्या पञ्चद्विड़ यहाँ के ब्राह्मणों से किसी बात में हीन है? क्या वे गोत्र प्रवर्तक उन ऋषियों के कुल परम्परा में उत्पन्न नहीं है? या कि सब एक साथ बैठ खा-पी लेते हैं इसलिये प्रतिष्ठा में हम के कुछ हंटे हैं। जब ब्राह्मणों की क्रम ठीक नहीं है तब क्षत्री और वैश्य तथा शूद्रों की कौन कहें? क्षत्री सब वैश्य और शूद्र भी अपने जाति का सह भोजन चला दें तो इसमें कौन सी धर्म की हानि है? बुद्धिमानों का सिद्धान्त है।

‘सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्ध त्यजति पण्डितः’

अभी अच्छा है पहले से इसकी तदबीर कर रक्खो नहीं तो बङ्गाल मदरास बाम्बे तुम्हारे लिये नमूना तैयार है खानपान में उनसे भी बुरी दशा तुम्हारी होने वाली है। तब एक-एक जाति का सह-भोजन प्रचलित कर हाड़ की उत्तमता के कुलाभिमान को इस बात में क्यों न अलग कर दो। कुलाभिमान का अङ्ग हाड़ की उत्तमता की हम किसी अच्छी बात कान में लावें तो बहुत ही अच्छा हो पर सो न कर किस बुरी तरह से इसका इस्तेमाल कर रहे हैं। कूड़ा अकिल वाले पुराने क्रम के लोगों को हमारा यह लेख बहुत ही नापसन्द होगा जिसे पढ़ न जानिये क्या-क्या खयाल उनके जी में हमारी ओर होगा। किन्तु लाचारी है जिसमें किसी तरह की भलाई समझ पड़े उसे समय-समय चिताते जायेंगे मानो या न मानो।

फरवरी १८६०

२६--भिक्षा-वृत्ति

वृत्ति अर्थात् जीवन पार करने का एक विशेष उपाय को वृत्ति कहते हैं। वह उपाय अनेक प्रकार के हैं, मजदूरी से लगाकर शाहनशाही तक जो हमको हमारी दशा के अनुकूल उत्तम, मध्यम, अधम जिस दिशा में हम प्राप्त हों वैसी ही वृत्ति को अवलम्बन कर जीवन पार करते हैं। भिक्षा एक वृत्ति हमारे ही देश में करार पाई है। हट्टे-कट्टे तन्दुरस्त हाथ-पाँव आदि पाँचों इन्द्रियों के सही सलामत रहते किसी के सामने हाथ पसारने में शरम और हिजाब को मन में जगह न देना वरन् किसी किसी मौके पर इसे बड़ी प्रतिष्ठा और इज्जत समझना हमारे ही यहाँ है। जहाँ कुल आबादी का कम से कम चौथा हिस्सा केवल इसी से अपनी ज़िन्दगी पार करता है। ब्राह्मणों में तो बहुत ही थोड़े ऐसे निकलेंगे दान लेने से मुँह मोड़ अपने को अयाचक मान रखना है। सच तो यों है कि ब्राह्मणता को निबाहना इतना कठिन है कि जरा सी बात में ब्राह्मणत्व का विसर्जन हो जाता है। इसी उसूल को मन में रख ग्रन्थकार लिख गये हैं

“विद्यते ब्राह्मणे दमः”

अर्थात् कैसा ही ब्राह्मण हो उसमें कुछ न कुछ मन और इन्द्रियों के दवाने की शक्ति अवश्य रहेगी। सो बात ब्राह्मणों में जव रही होगी वह कोई और ही समय था अब तो ब्राह्मण के घर पैदा मात्र हुआ हो; भिक्षा-वृत्ति तो मानो उसकी बपौती है। रहे और लक्षण जिनसे ब्राह्मणता मनुष्य में आती है उस ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं है वरन् शूद्र और पतित भी जो काम करने में सकुचाता होगा उसे ये बेधड़क कर गुजरेंगे। तौभी दक्षिणा के पात्र अपने को मानते ही रहेंगे वरन दक्षिणा लेना अपना मुख्य काम और अपनी जाति की शोभा समझते हैं। फिर जब सिरे की भेड़ काली निकली तो और

बाकी के लिये कौन भीखै । इस देश के ब्राह्मण अग्र जन्मा है जब उन्होंने ही ने इस बेशरमी को इखतियार किया तो औरों की कौन कहे खुल खेले मंगता बनने को सैकड़ों बहाने निकाल लिये । राम फटाका रमाय अच्युत गोवी बन बैठे ।

“जाति पाँति पूछै नहि कोय हरि को भजै सो हरि का होय”

सच पूछो तो भीख माँगना एक हुनर सा हम लोगों में हो गया है कैसे-कैसे रूप कसते है और भेष बनाते है । तद्यथा खाक रमाते है; जटा रखाते है, गेरुआ रँगते है; कोई ऊर्ध्वबाहु बनते है; कोई कानफटे हो जाते है; कोई दण्ड और कमण्डलु लिये डोलते है; कोई बेशरमी की मूर्ति नंगे रहते है । औघड़, अघोगी, मुड़चिरे, डडी, सन्यासी, उदासी, निर्मले, सुथरे, बेनवा, आजाद, आदि अनगिनत रूप धर लूटते खाते फिरते है । यहाँ की मूर्ख प्रजा में एक ऐमा कुसंस्कार छाया हुआ है कि लोग भेष को पूजते है कितनी ही चेष्टा करो वह कुसंस्कार दूर नहीं होता । आदमी के गुण-ऐगुण पर कभी किसी का ध्यान नहीं जाता; कैसा ही आवाारा हो उनके पन्थ का भेष बना ले बस उनका माननीय गुरु हो गया । इस भिक्ष की वृत्ति को यहाँ तक तरक्की इस मुल्क में दी गई है कि सैकड़ो हजारो इसी भेष की बदौलत माजामाल लाखों रुपये के धनी बन बैठे हैं । वल्लभकुल के गोसाँई इसके उदाहरण है । सच पूछो तो इन गोसाँइयो की और क्या जीविका है वही भीख; एक - एक पधरौनी में जिन्हे लाखों भेट मे आता है । देश भर के बचक बकवृत्ति ठग हमारे मतिमन्द धर्मशील दाताओं का धन लूट-लूट खूब गुलछरें उड़ाते है; आवारगी और कुदृग को कैसी जीनत दिये हुये है । पर हृदय के अन्धे हमारे दानी कभी यह खयाल नहीं करते कि क्या हम इतने रुपये बरवाद किये डालते हैं और पुण्य के बदले पाप बटोरते जाते है । अपने पास का धन गँवाते है और देश मे सुस्त आलसी निर्गुण आवाारा लोगों के दल बढ़ा रहे है ।

बाहर से जो यहाँ आये उन पर भी इस हिन्द की हवा व्याप गई । मुसल्मान अपनी पहिले की जरारी तरारी भूल अन्त को मुजाविर साई

पीर पयगम्बर पेशवा फकीर दुर्वेश आदि अनेक नाम और रूप से लोगों को ठगने लगे । फिर माँगने का शऊर और सलीका जैसा इन्हें है हम हिन्दुओं को सो भी नहीं आता । संस्कृत जो इन दिनों बहुत ही दब गई और उसका पढ़ना कम होता जाता है उसका भी यही कारण मालूम होता है कि पिछले समय केवल ब्राह्मण ही उसे पढ़ते पढ़ाते रहे उन्होंने जिसमें अपना फाइदा देखा उसी की तरक्की इसमें किया । अब जो संस्कृत पढ़ी पढ़ाई जाती है वह वही है जिसमें ब्राह्मणों को कुछ मिलने का तार है । विशेष ग्रन्थ जो इस समय प्रचलित हो रहे हैं वे या तो कर्मकाण्ड हैं या फलित ज्योतिष अथवा मूर्त ग्रन्थ और पुराण । शास्त्रों का पढ़ना ही उठ गया ; विज्ञान का तो कही यहाँ चर्चा ही नहीं है न पहले इतना अधिक रहा । इसलिये कि उसमें मिलने की कोई बात तो हुई नहीं तब हमारे महाराज लोग क्यों उसे पढ़ते पढ़ाते । इन्हीं सब कारण से भिक्षावृत्ति यहाँ इतनी तरक्की पकड़े हुये हैं ; जितना दान पुण्य हमारे यहाँ किया जाता है उतना किसी देश में नहीं होता किन्तु इतना बेकाइदे होता है कि उससे कोई उपकार न हो बहुत बड़ा अपकार होता है । लाचारी है ।

दिसम्बर १९००

३०—गया-यात्रा

जीवितो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरि भोजनात् ।

गयाया पिण्डदानेन त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥

सपूत लड़के की तीन पहचान ग्रन्थकारों ने लिखा है । जीते जी पिता की आज्ञा के बाहर न होना—क्षयाह के दिन बहुत लोगो को खिलाना पिलाना और गया मे जाय पिण्ड दान करना । जिनके मत में परलोक ईश्वर तथा स्वर्ग नरक कुछ हई नही उनकी तो बात ही निराली है । गये घर का जिकिर क्या, पर हाँ ! आस्तिक कोटि वाले जिनके अकुटिल सरल सोधे चित्त में श्रद्धा बुद्धि का उद्गार है, परमेश्वर का अस्तित्व, उसमें भक्ति भावना, सुकृत-दुष्कृत का परिपाक, स्वर्ग नरक आदि समस्त पारलौकिक बातें जिनको सरदर्द का बाइस नही है, उन बाल बच्चे वाले गृहस्थो का गया श्राद्ध एक अवश्य कर्तव्य-कर्म है ।

शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ।

उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम्

यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तन्नयेद ब्रह्मणाश्वतम् ॥

शमी के पत्र बराबर भी पिण्ड गया शिर में दिया हुआ सात गोत्र के एकोत्तर सतकुल का उद्धार कर देता है । अपना गोत्र, नाना का गोत्र, श्वसुर का, बहन का, कन्या का, वग की बहिन का, माँ की बहिन का, ये सात गोत्र समझे गए है इनमे जिसके नाम से पिण्ड दिया जाता है उसे शाश्वत ब्रह्म पद के प्राप्ति का हेतु होता है—

“यष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां ब्रजेत्”

शास्त्र की आज्ञा है बहुत से पुत्र उत्पन्न करै कदाचित्त उनमें कोई एक भी ऐसा श्रद्धालु निकलै कि गया यात्रा से पितरों का उद्धार करने वाला हो । पितृभवत पुत्र की गया यात्रा में श्रद्धा पैदा करा

देने वाले ऐसे-ऐसे अनेक रोचक प्रशंसा वाक्य पाये जाते हैं। जगन्नाथ' श्रीनाथ, द्वारिका इत्यादि आधुनिक तीर्थों के समान गया क्षेत्र थोड़े दिन का प्रचलित तीर्थ नहीं है किन्तु इसका मान कब से है और यह कितना पुराना तीर्थ है इसकी कयामत के सुबूत में डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने जिल्द की जिल्द लिख डाला है। तीर्थ की बुद्धि अलग भी कर दी जाय तो गया की भूमि "एंटीक्वेटियन" पुरानी बात की खोज करने वालों के लिए पुरानी बात की तलाश का यह एक ऐसा भारी मैदान है जिसके मुकाबिले हिन्दुस्तान में दो ही एक ऐसे स्थान पाये जाते हैं जो प्राचीनता में गया की बराबरी कर सकें। दूसरे यह कि यह तीर्थ किसी विशेष संप्रदाय या मत का नहीं है कि किसी खास फिरके के लोग इसे मानते हों वरन् वेदोक्त कर्म के करने वाले, शैव-शाक्त, वैष्णव चाहें जिस मत का हो सबों को पिण्डदान अभीष्ट है।

बाँकीपूर से गया तक जो रेल की शाखा गई है उस पर सवार होकर चला तो दूसरा स्टेशन पुनपुना मिलता है। पुनपुना एक छोटी सी पहाड़ी नदी है किन्तु पवित्रता में समद्रगामिनी बड़ी नदियों से किसी अंश में कम नहीं है।

कीकटेषु गया पुण्या पुण्य राजगृह वनम् ।

च्यवनस्याश्रम पुण्य नदी पुण्या पुनः पुन ॥

कीकट ऐसे अपवित्र देश में गया पुण्यभूमि है। राजगृह वन पवित्र है। यह स्थान गया से १० कोस पूर्व को है। किसी समय जरामन्ध की राजधानी थी। पर्वतों के बीच पुराने खण्डहर "एंटीक्वेटियन" प्राचीन विवरण विवेचक के लिये अनेक प्राचीन बातों के जानने का अद्भुत स्थान है। च्यवन का आश्रम पुण्यभूमि है। यह आश्रम सोन नदी के तट पर है कहीं पर है इसका ठीक पता नहीं लगता। नदियों में पुनपुना पवित्र है। पुराणकर्ताओं ने कीकट या मगधदेश को ऐसा अपवित्र क्यों माना इसका कोई विशेष कारण मन में नहीं आता। कदाचित् यह कारण हो कि यह देश बौद्धों का

अनादिकाल से निवास स्थान था। बुद्धदेव यहीं जन्मे और अहिंसा-मूलक श्रेष्ठ बौद्धधर्म का प्रचार भी पहले पहल यहीं हुआ उपरान्त बुद्धधर्म समस्त हिन्दुस्तान में फैल गया। वेदोक्त धर्म संकुचित हो कहीं-कहीं रह गया था। कीकट देश में वेदोक्त कर्म करने वाले केवल उन्ही स्थानों में रह गए थे जिनका नाम ऊपर के श्लोक में दिया गया है इसी से गया पुनपुना राजगृह अब तक पवित्र माने जाते हैं।

यहाँ पर इतना और विचार करने योग्य है कि गया बौद्धों के पहले से वेदोक्त कर्म करने वालों का तीर्थ है कि बौद्धों के निराकरण के उपरांत आर्यों का यह एक मुख्य तीर्थ मान लिया गया। हमारे मन में तो कुछ ऐसा आता है कि वह प्रान्त जो हिन्दुस्तान के प्राचीन भूगोल में कीकट के नाम से प्रसिद्ध है बौद्धों का मुख्य स्थान है। न केवल उतना ही देश जो अब सूबे बिहार कहलाता है वरन् उड़ीसा तक बौद्धों के अधिकार की मुख्य भूमि थी। क्योंकि जगन्नाथपुरी तो बौद्धों का मुख्य तीर्थ था। बहुत लोग जगन्नाथ को बुद्धावतार ही मानते हैं। दूसरे यह कि यहाँ बौद्ध भिक्षुओं के उतने मठ चैत्य या बिहार थे कि पीछे से समस्त देश का देश बिहार कहलाने लगा। उपरान्त जब बौद्ध परास्त किये गए और देश से निकाले गए और वेद का फिर से प्रचार किया गया तब गया क्षेत्र वैदिक कर्म करने वालों का प्रधान तीर्थ कर लिया गया। दस्तूर है जीता गया शत्रु जिस बात से चिढ़ता है विजेता उसके चिढ़ाने को वह बात वहाँ अवश्य करते हैं जैसे मुमलमान हमारे चिढ़ाने को गोवध करते हैं वैसे ही उन बौद्धों को श्राद्ध आदि वैदिक कर्म की बड़ी चिढ़ थी। इसलिए विजेता वैदिक धर्मावलम्बियों ने गया में ही श्राद्ध का विशेष अधिकार रक्खा और तीर्थों में स्नान-दान आदि अनेक धर्म के काम का अनुष्ठान लिखा है। गया में केवल पिंडदान का विधान जो मुख्य है उसका यही कारण है। गयासुर का वृत्तांत जैसा गया माहात्म्य में लिखा है उसे पढ़ मन में आता है कदाचित गयासुर भी

उन्हीं बौद्धों में कोई रहा हो तो क्या अचरज है। गया में ४५ स्थानों में श्राद्ध करना पड़ता है उनमें बोधि गया भी एक स्थान है जिसका वृत्तांत हम आगे लिखेंगे। यहाँ पर इतना सूचित करना उचित जान पड़ता है कि बोधिगया में पहुँच “बोधिवटं नत्वा” ऐसा लिखा है इससे निश्चय होता है कि गया बौद्धों का प्राचीन स्थान है।

वाचस्पति मिश्र कृत गया पद्धति में जिस क्रम से इन ४५ वेदियों का विधान लिखा है तदनुसार यहाँ पर हम एक-एक वेदी का खुलासा हाल और कृत्य लिखते हैं

ततो गयां प्रवेशे तु पूर्वतोऽस्ति महानदी ।

तत्र तोयं समुत्पाद्य स्नातव्यं विमले जले ॥

गया में पहुँचने ही पहले दिन का कृत्य फल्गू में स्नान और पार्वण श्राद्ध के विधान में पिण्ड-दान करना उचित है। दक्षिणात्य गया में जितनी श्राद्ध करते हैं सब में खीर या भात का पिण्ड देते हैं पर हम लोग एतद्देशियो में कुछ ऐसी ही प्रथा चल पड़ी है कि फल्गू विष्णुपद और अक्षयवट तीन स्थान में पार्वण श्राद्ध की विधि से खीर के पिण्ड की पूरी श्राद्ध करते हैं बाकी स्थानों में जवा के पिसान का पिण्ड केवल तीर्थ श्राद्ध मानते हैं। फल्गू एक अद्भुत नदी देखने में आई। इसकी दरदरी मोटी बालू ऊपर से मरुभूमि मालूम होती है किन्तु चार अंगुल का गहरा गडवा खोद देने से पानी का चश्मा प्रगट हो आता है चाहे जितना पानी ले लो। ऐसा मालूम होता है कि इसके नीचे पहाड़ी चट्टान हैं। बरसात का पानी जो दरदरी बालू में रह जाता है मिट्टी न रहने से नीचे पृथ्वी में नहीं सोखता। हवा और घाम लगने से ऊपर का बालू सूख जाता है। पर नीचे बालू के बीच पानी बना रहता है। दूसरा स्थान पिण्डदान का बस्ती से चार या पाँच मील की दूरी पर प्रेतपर्वत नाम का एक खड़ा पहाड़ है नीचे इसके अत्यंत गदले और सड़े पानी का ब्रह्म सरोवर नाम का एक कुण्ड है यहाँ श्राद्ध करना होता है। हमें गया की म्युनिस्पैलिटी के कुप्रबन्ध तथा महादुराचारी गया के उन्मत्त पंडों पर

बड़ा खेद होता है कि वे सिवाय यात्रियों को मनमाना दुहने के तीर्थ स्थानों की कुछ फिकिर नहीं करते वरन् उन्हें निपट बेमरम्मत और बरबाद कर रक्खा है। जो धन इन कुमार्गी पड़ो का कुवलन में असत व्यय होता है उसके शतांश में भी इन तीर्थों की रौनक और मरम्मत अच्छी तरह हो सकती है। बंगाल गवर्नमेंट को हम सविनय चिताते हैं कि गया की म्युनिस्पैलिटी को इन तीर्थों के सुधार तथा जो यात्री वहाँ जाय उनके आराम और आशाइस के लिए लाचार करे और जो म्युनिस्पैलिटी गवर्नमेंट के हिदायत को अमल में न लावे तो गवर्नमेंट खुद उन तीर्थों की सफाई और मरम्मत करा दे खर्च उसका इन्हीं पण्डों में लिया जाय जिन्हें बिना मेहनत का इतना असंख्य धन यात्रियों से मिलता है। रास्ता प्रेतपर्वत का बड़ा खराब है। अचरज है जिस रास्ते से सौ पचास आदमी का नित्य गुजर होता हो और मेलों में कई हजार आदमियों की भीड़ जिस रास्ते से नित्य आती जाती है वहाँ का रास्ता इतना निकम्मा हो। यह महारूखा पर्वत २५० फुट के ऊपर ऊँचाई में होगा। सेधिया के किसी अधिकारी की बनवाई ४०० के ऊपर इसमें सीढ़ी है। ऊपर पहुँच वहाँ फिर आढ़ करना पड़ता है। उसी पहाड़ में एक जगह बाल सी पतली और फुट भर की लम्बी सोने की एक रेखा है। वहाँ से चल रास्ते में प्रेतशिला नाम का एक दूसरा पर्वत है ३०० सीढ़ी इसमें भी है। यह पहाड़ प्रेतपर्वत की अपेक्षा अधिक रमणीक है। सीढ़ियाँ भी इस पर्वत की अधिक चौड़ी हैं। इस पर्वत पर पितरो की तृप्ति के लिए तिल में मिलाय सत्तू उड़ाना होता है। नीचे उतर राम-सरोवर नाम का एक कुण्ड है। ब्रह्म सरोवर के समान यह तालाब भी महागदला और मैला है।

ऐसा मालूम होता है प्रेतपर्वत के अधिष्ठाता प्रेत लोग गया के पण्डों के कुचरित्र पर और वहाँ की म्युनिस्पैलिटी के प्रबन्ध पर खिन्न हो रोया करते हैं उन्हीं के आँसू और आँख की कीचड़ बह-बह कर जमा हो रामकुण्ड के जन रूप में परिणत हो गया है। यहाँ पिशाच की सी आकृति धरे और पिशाच की सी कुछ बोली बोलता हुआ प्रेतपर्वत का

पण्डा आकर यात्रियों को सताता है और एक रुपया कर लेता है। वहाँ से थोड़ी दूर चल नग पर्वत पर यमराज धर्मराज को तिल मिश्रित दो पिण्ड देना होता है। तीसरे दिन का कृत्य पंच-तीर्थी है। पहिले उत्तर मानस में उदीची तीर्थ है यह कुण्ड वस्ती के मध्य में निपट गदला और मैला है। तालाब से ऐसी बढवू उडती है कि वहाँ बैठ पिण्डदान करते समय नाक सड़ती है। साल में एक बार भी यह तालाब साफ कर दिया जाय तो यात्रियों को पिण्डदान के समय इस कदर बढवू न सहना पड़े। यहाँ उत्तर मानस के अधिष्ठाता आदित्य जनार्दन का दर्शन पूजन कर मौन हो दक्षिण मानस तीर्थ में आना पड़ता है। दक्षिण मानस और कनखल तीर्थ दोनों एक ही स्थान में है। यहाँ जो तालाब है सो इतना गंदला नहीं है। हाल में छोटेलाल गयावाल ने निज खर्च से इसकी सफाई करवा दिया था इसलिये इस कुण्ड में बढवू की उतनी तकलीफ से आजाद रहे। यहाँ दो बार पिण्डदान करना होता है। एक दक्षिण मानस में दूसरा कनखल तीर्थ में और दक्षिणायन आदित्य का दर्शन कर मौनव्रत का विसर्जन होता है।

वहाँ से थोड़ी दूर पर फल्गू के किनारे गदालोल तीर्थ है। यहाँ पिण्डदान और पिता महेश्वर का दर्शन कर पञ्चतीर्थी कृत्य समाप्त हो जाता है। चौथे दिन गया में ३ मील पर सरस्वती कुण्ड है। यह कुण्ड फल्गू ही में है। यहाँ स्नान के उपरान्त सन्ध्यो-पामन में प्रणामदान किसी दिन सन्ध्या न करने का दोष जाना रहता है। स्नान के उपरान्त सरस्वती की बड़ी प्राचीन मूर्ति का दर्शन कर आगे चलना पड़ता है। सरस्वती की उग्र-मूर्ति का दर्शन कर चित्त में अद्भुत शान्ति आती है। यह मठ बाधि गया के महन्ता के अधिकार में है। गयावाले पंडों का इसमें कोई अधिकार नहीं है। ये महन्त शङ्करमतावलम्बी नाम मात्र के मन्थासी बड़े समृद्धि वाले राजा के समान हैं। मालूम होता है शङ्कराचार्य ने जब बुद्ध मतावलम्बियों को परास्त किया तब से अपना अधिकार यहाँ जमा रक्खा। कदाचित् पहिले इनमें महात्मा रहे हों अब तो निरे प्रमादी देखे गए। एक मील चल कर धर्मारण्यतीर्थ है धर्मराज ने यहाँ यज्ञ किया है।

एक ओर पत्थर का डेढ़ हाथ ऊँचा खम्भा अब तक गड़ा है। दूसरी ओर धर्म कूप है पिण्डा उसमें पड़ते-पड़ते यह कुँआ पट गया है थोड़े ही खर्च में साफ़ हो सकता है। गया वालों के प्रमाद से भ्रष्ट और बेमरम्मत पड़ा है। यूप अर्थात् खम्भा और धर्म-कूप के बीच में पिण्डदान करना होता है मालूम होता है इस खम्भे को किसी ने हाल में गाड़ दिया है। यूप और कूप का बीच ४ या ५ गज का उत्तर से दक्षिण को है। स्थान बड़ा विमल है। यहाँ पहुँचते ही चित्त की वृत्ति बदल जाती है। उपरान्त पास ही मतङ्ग बापी है यहाँ पिण्डदान और मतङ्गेश्वर का दर्शन करना होता है। यहाँ से आध मील चलकर फल्गू का बालू तै करना महादुर्घट हो जाता है। गरमी के दिनों में इस तपे बालू में चलने का सब क्लेश भूल जाता है और इस स्थान की रम्यता तथा प्राचीनता पर जी दग होता है।

बुद्धदेव का यहाँ एक बड़ा प्राचीन मन्दिर है। वहाँ जो लोग पुजेरी थे उनसे पूछने से मालूम हुआ कि यह मन्दिर दो सहस्त्र वर्ष में भी अधिक प्राचीन है बिल्कुल ढँ गया था बगाल के लफ्टिनेट गवर्नर सर ऐसलीईडिन के समय कई लाख रुपया खर्च कर चीन का रहने वाला किसी बौद्ध महाजन के खर्च से इसकी फिर से मरम्मत की गई है। जो मूर्तियाँ और पत्थर मन्दिर की मरम्मत करते समय इसकी नेह में निकले सब वही गोल अठपहल चौखुटे चउतरो पर चुन दिए गए हैं। मन्दिर के बीच में बुद्धदेव की बड़ी भारी विशाल मूर्ति रखी हुई है जिसके देखने से अद्भुत शान्ति मन में स्थान पाती है। इसमें की एक-एक बात जाँचने और जानने के लिए कई दिन चाहिए। आध घंटे में हम वहाँ की प्राचीन बातों को क्या समझ सकते थे। बुद्धदेव की मूर्ति इल्म शगतराशी की कमाल प्रगट करती है। ऐसी सुडौल मूर्ति बहुत कम देखने में आई है। बम्बई की खोह इल्लोरा इलिफेटा के समान यह मन्दिर भी बुद्ध धर्म की प्राचीनता के विवरण का एक ही स्थान है। पुराने कट्टर जाहिलों की तो बात ही निराली है। पढा लिखा गया की यात्रा कर हिन्दू धर्म की हठ में आय बुद्धदेव को न देखा और इस मन्दिर की प्राचीनता का

यत्किंचित् अवलोकन न किया उसने मानो बड़ा भारी मौका खो दिया । अस्तु वहाँ से पाँच या ६ मील चल गया में लौट ब्रह्म सरोवर में स्नान तर्पण और श्राद्ध करना होता है । यह तालाब बस्ती के बाहर होने से औरों से कुछ साफ और स्वच्छ है । पास ही दो या तीन हाथ का लम्बा पहाड़ का एक टुकड़ा एक गड्ढे में निकला हुआ है निहायत बदशकल एक मूर्ति भी उसमें खुदी हुई है । यहाँ पर काग और श्वान के नाम दो पिण्ड देना होता है इस स्थान को कागवलि कहते हैं ।

पचम दिन का कृत्य विष्णु पद पर श्राद्ध है । यहाँ पिण्डदान करने से प्रही बोध होता है मानो पितृ ऋण से आज हमारा उद्धार हुआ । एक ऐसा आनन्द और सतोष सच्चे पितृभक्त के मन में स्थान पाता है जिसको लिखकर बतलाना कुछ दुर्घट सा मालूम होता है । चित्त में यही भाव उत्पन्न होता है मानो जीवन की सार्थकता यही थी और हम अब अपना कर्तव्य कर्म कर चुके । अहल्याबाई का बनवाया काले पत्थर का एक बड़ा भारी मन्दिर है ऊँचाई में काशी के विश्वनाथ के मन्दिर से कम नहीं है । बीच मन्दिर में अठपहल रुण्ड के बीच अठारह अगुल का पूरा चरण पूर्व से पश्चिम को उपटा हुआ है । कई कई करोड़ आदमियों का विश्वास परिणत हो इस स्थान को प्रकाशित कर रहा है । यदि इसे कृत्रिम भी कहें तो न जानिये किस समय यह बनाया गया इसका कुछ पता नहीं लगता । चरण यदि कृत्रिम भी हो तो इस स्थान में अवश्य कोई ऐसी बात है जिससे हिन्दूमत के विश्वास के अनुसार पितरों को सद्गति का यह एक मात्र परमोत्तम द्वार है । इसमें कुछ संदेह नहीं गया, प्रयाग और काशी तीन स्थान तब से तीर्थभूमि में शामिल किये गए हैं जब पुराणों का प्रचार हिन्दुस्तान में प्रारम्भ हो चला था वेद तथा षट् दर्शन जीर्ण दशा में आ चले थे और यह समय बौद्धों के हाथ से भारत के उद्धार का था । यहाँ पार्वणश्राद्ध करना होता है और पिण्डदान खीर का होता है । विष्णुपद से लगी हुई एक दूसरी पत्थर की चौकोर चट्टान है पत्थर के मोटे-मोटे खम्भों के सहारे ऊपर से पटी हुई है । यहाँ रुद्रपद—ब्रह्मपद

—कार्तिकेय-दक्षिणाग्नि—गार्हपत्याग्नि—अब—सत्याग्नि—सभ्याग्नि—
आहवनीयाग्नि— गणेशपद—चन्द्रपद—इन्द्रपद—सूर्यपद — दधीचपद
मातङ्गपद—करावपद—कौञ्चपद—अगस्त्यपद—कश्यपपद इन स्थानों
मे अलग अलग पिण्डदान करना होता है । यहाँ चाहे पार्वणश्राद्ध
विधि से पिण्डदान करै चाहे केवल तीर्थ श्राद्ध मात्र करै उपरान्त
गजकर्णिका मे केवल तर्पण मात्र करना होता है । वह चट्टान पन्द्रह
या बीस गज लम्बी चौड़ी है इसी में सब तीर्थ है । सब १८ तीर्थ
हैं इनमें चाहे १८ वेदी एक दिन में कर डाले किन्तु ३ दिन में
करने से विधि में कोई अन्तर नहीं होता और आसानी होती है ।

उपरान्त फल्गू के उम पार सीता कुण्ड में स्नान और मातृ
सौभाग्य दान करना होता है । ऊपर चढ़ एक छोटा सा पर्वत है
यहाँ रामगया के नाम से पिण्डदान होता है । राम और सीता
की अलग अलग मूर्तियाँ है । उनका दर्शन करना होता है । ये सब
मूर्तियाँ आधुनिक हैं यहाँ कोई ऐसी बात नहीं देखी गई जो
विशेष लक्ष्य के योग्य होती । सीता कुण्ड में बालू का पिण्ड देना
होता है यहाँ से चनकर फल्गू के इस पार गया शिर मे पिण्डदान
करना होता है । यहाँ एक पर्वत थोड़ी ऊँचाई का बड़ा रमणीक है ।
पास ही दूसरा चट्टान मुण्डपृष्ठा नाम का है यहाँ भी पिण्डदान होता है ।
नीचे उतर गया कूप है यह बिल्कुल कृत्रिम तीर्थ है । इस कुँआ में
लोग नरियर फेकते हैं किन्तु इसका लेख कही नहीं है । गया कूप भी
कृत्रिम मालूम हुआ । उपरान्त धौतपद मे पिण्डदान होता है । तीन
या चार हाथ लम्बा मैले सङ्गमर्मर के रंग का पर्वत का एक टुकड़ा
यहाँ निकला हुआ है । स्थान यह रमणीक है । यहाँ से चल कर
आदि गया तीर्थ है यहाँ जनार्दन की मूर्ति बड़ी प्रकाशमान
और पुरानी मालूम हुई और पर्वत पर खुदी हुई है । विष्णुपद
के पास जो गदाधर की मूर्ति है उससे इस मूर्ति में कुछ
विचित्रता मालूम हुई । बीच में मंगलागौरी की प्राचीन मूर्ति का दर्शन

कर भीम गंगा में पिण्डदान होता है । भीमसेन ने गदाधर विष्णु को प्रणाम किया हैं उसका चिन्ह अब तक बना है किन्तु यह स्थान महा मैला और बेमरम्मत पड़ा है । वहाँ से चलकर थोड़ी दूर पर गोप्रचारण तीर्थ है । १० या १२ गज लम्बी ३ या ४ गज चौड़ी सफेद मटीले पत्थर की एक चट्टान है । बराबर चट्टान भर में गौ का खुर उपटा हुआ है जो कृत्रिम किसी तरह नहीं मालूम होता । यहाँ पिण्डदान करने से चित्त अत्यन्त विमल भाव ग्रहण करता है । वहाँ से थोड़ा चलकर गदालोल तीर्थ है पास ही अत्यन्त मैला और बेमरम्मत रुक्मिणी कुण्ड नाम का एक तालाब है । गदालोल तीर्थ भी अत्यन्त मैला और बेमरम्मत है यहाँ पिण्डदान होता है । पास ही इसके अक्षयवट तीर्थ है । एक बरगद का वृक्ष यहाँ पर है पर वृक्ष बहुत पुराना नहीं मालूम होता है । जो प्रकाश विष्णुपद में है सो यहाँ नहीं है न यहाँ जाने से चित्त की वृत्ति में कोई अन्तर होता है । हमें यह तीर्थ बिल्कुल कृत्रिम मालूम हुआ । कोई बात भी प्राचीनता की न मालूम हुई । गयावालों ने इसे सुफल बोलने का एक स्थान नियत कर लिया है यहाँ पार्वण श्राद्धविधि से खीर का पिण्डदान होता है । गयावाले यहाँ मनमाना यात्रियों को दुहते हैं जिनका विश्वास है कि गयावाले जब तक पीठ न ठोकेंगा गया सुफल न हाँगी पितर न तरंगे किन्तु यह सर्वथा कच्ची समझ है । असंख्य धन जो इन पण्डों को दिया जाता है वही इन तीर्थों की रौनक और मरम्मत में लगाया जाय तो विशेष उपकार हो । दान के प्रकरण में शास्त्रानुसार पात्र मुख्य अंग है वह पात्रता गया के पण्डों में कही किसी में भी न पाई गई तब उनको इतना अधिक देने से क्या लाभ ? इनका लोग समझ कर दिया करै तो ये अवश्य अपने को पात्र बनाने की चेष्टा करें । केवल गया पर क्या हम समस्त तीर्थ के संबंध में यही कहते हैं कि तीर्थ का स्नान यात्रा आदि जितने सविधान है सब किये जाय पण्डों को मामूली से अधिक न दिया जाय तो ये पण्डे मुधर जाय और अपने को दान पात्र बनाने की भी चेष्टा करै नहीं तो इस ; रोशनी के जमाने में स्वामी दयानंद की कृपा से तीर्थ

सब डगमगा रहे हैं उनका महात्म्य अब जाया चाहता है जो हिंदूधर्म के लिए बड़ी हानि का हेतु होगा ।

“सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः”

जब देखते हैं पंडों के कुसंग से शिष्ट विवेकी पढ़े-लिखे लोगों की रुचि तीर्थ की ओर से हटती जाती है तो इन पंडों का मान पूजन कम कर आकी सब तीर्थ के कृत्य कायम रहें तो कौन सी हानि है । स्वामी दयानंद भी तीर्थों को इसी से उड़ाया चाहते थे कि प्रजा का असंख्य धन जो पंडों को देने से असदव्यय होता है वही देश की भलाई के काम में लगाया जाय तो कितना उपकार हो पर यह उनकी भूल थी । अक्षयवट के पास ही ३०० सीढ़ी का ऊँचा ब्रह्मयोनि नाम का पर्वत है यह कोई तीर्थ नहीं है केवल एक तिलिस्मात है । पहाड़ के दो शृङ्ग एक जगह आकर मिल गए हैं दो गज लम्बी गोलाई में हाथ भर की एक बिल सी मांद के माफिक है । इसके भीतर जाने वाला तिरछा होकर छाती के बल घुमने से आसानी में पार चला जा सकता है । दूसरा रुद्रयोनि नाम का एक ढलुआ दर्रा है इसके भीतर भी उसी हिकमत से घुसने में आसानी होती है । यहाँ से चल कर ब्रह्म सरोवर के पास बैतरणी नाम का मैले गन्दे पानी का एक पुखरा है यहाँ श्राद्ध, तर्पण और गोदान करना होता है । अक्षयवट में श्राद्ध के उपरांत फल्गू में गायत्री कुण्ड है इसमें स्नान दही और चावल का पिण्डदान और गायत्री का दर्शन कर यात्रा कृत्य की समाप्ति होती है । गयायात्रा गृहस्थ मात्र के लिए उचित और अवश्य कर्तव्य कर्म है । हमने वाचस्पति मिश्र कृत गयापद्धति के अनुसार जहाँ जो कृत्य करना चाहिए सब लिख दिया । इसे अपने पास रख यात्रा करने वाले को पूरी सहायता मिल सकती है और जो गया नहीं गए उनको यात्रा का क्लेश बिना उठाये गया का सब हाल हस्तामलक हो सकता है । इसलिए पढ़ने वालों से प्रार्थना है कि इस लेख को निरा भरती और फीका न समझेंगे । अंत में बंगाल गवर्नमेंट से फिर प्रार्थना

है कि गया के बंजरममत बिगड़े तीर्थों के सुधार की ओर ध्यान दें क्योंकि बिना गवर्नमेन्ट के हस्तक्षेप के वहाँ के अनेक कुण्डों की सफाई तथा टूटे फूटे स्थानों का सुधार और मरम्मत असंभव है। यहाँ के पंडों को इसका ख्याल होता तो हम कभी गवर्नमेन्ट को बलेश न देते। जिस कदर आमदनी इन तीर्थों की बदौलत इन पंडों की है, उस हिसाब से यह कोई बड़ी बात नहीं है। बहुत ही थोड़े धन से यह काम हो सकता है, किन्तु क्या करे जब देखते हैं सीधी अंगुली धी नहीं निकलता तो अंगुली की टेढ़ी कर धी निकालना होता है।

मार्च १८९४

३१—लोकोत्तर और सर्वसाधारण

लोकोत्तर और सर्वसाधारण दोनों विरुद्ध भाव के प्रदर्शक वाक्य हैं। यहाँ लौं कि जब तक सर्वसाधारण के नाम की परख लगी रहती है तब तक लोकोत्तर गुण की गन्ध भी उसमें नहीं आ सकती। यह अलबत्ता मान लिया जा सकता है कि सर्वसाधारण से लोकोत्तर की उत्पत्ति है। बहुधा देखा भी गया है जो वस्तु पहले साधारण रही वही पीछे से लोकोत्तर हो गई। साधारण और लोकोत्तर में वही फर्क है जो सस्ते और महंगे में होता है कोई वस्तु जो पहले कम रहती है बड़े मोल की बिकती है और लोग उसे बड़ी चाह से लेते हैं वही पीछे जब अधिक हो गई मिट्टी के मोल बिकने लगती है उसका नयापन बिल्कुल जाता रहता है। लोगों की रुचि या श्रद्धा उसकी ओर से घट जाती है और साधारण शब्द उसके लिये प्रयोग किया जाता है मानो वह चीज अब कुछ रही ही नहीं।

विलायती अनेक भाँति के कपड़े, खिलौने, घड़ी, शीशे और दूसरी दूसरी सजावटी चीजें जब पहले पहल यहाँ आईं तो लोग उन्हें लोकोत्तर मान उन पर इतना लुभाने कि चौगुने पचगुने दाम देकर उन्हें खरीदा और विलाइत वालों ने लागत का अठगुना दाम उससे वसूल किया। अब वे ही सब चीजें इतनी साधारण हो गई कि पहले से तिहाई चौथाई दाम में मिलती हैं। चाय जब पहले पहल यूरोप में गई तो वहाँ सौ रुपये पौण्ड बिकी और बड़े-बड़े अमीरों में बादशाहों में बतौर तुहफे के समझी गई। अब बढ़ियाँ से बढ़ियाँ चाय दो रुपए पौण्ड मिलती है और कुली तक उसे अपने काम में लाते हैं। रेल और तार जब पहले पहल यहाँ जारी किये गए तो दिहाती गंवार इसे कोई ईश्वरीय अद्भुत शक्ति मान बहुत दिनों तक सिज्जदा करते रहे। जिस समय अंग्रेजी पढ़े कहीं सौ में एक थे देवता के तुल्य उनका

गौरव और प्रतिष्ठा थी। अब बी० ए० भी बीस या तीस के चह्ने जितना रख लीजिये।

मनुष्यों में भी जिनमें कोई ऐसी बात है जिससे वे सर्वसाधारण की श्रेणी के ऊपर हैं अपनी लोकोत्तर प्रतिभा सौन्दर्य चातुरी तथा और दूसरे गुणों के कारण महत्तर माने गए हैं उन्हीं का जीवन सफल है नहीं तो सर्वसाधारण वाली शापित दशा में रहे केवल उदर मात्र तो कौवे भी पाल लेते हैं :—

“काकोपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते”

कहावत है—

“खाना गेहूँ या रहना एहूँ”

या तो अपने में कोई लोकोत्तर चमत्कार रख सबके ऊपर रहना नहीं तो किसी दुर्गम वन कानन में जा बैठना जहाँ साधारण कोटिवालों की हवा भी न लगने पावे।

“कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।

मूर्ध्निहि सर्वलोकानां विशीयेत् वनेऽथवा ॥”

फूल के गुच्छों की भाँति मनस्वियों की निराली चाल हैं या तो सबों के सिर पर चढ़े-चढ़े फिरेंगे नहीं तो बन के बीच उसी पेड़ में लगे-लगे मुरझा के रह जाँयगे। लोकोत्तर चमत्कार की चाह रखना ही आत्मोत्कर्षविधान का मूल मंत्र है। जिस जाति या देश के लोग जितना ही इस मूल मन्त्र के साधक होंगे उतना ही उस देश या जाति में उन्नति का बीज जल्दी जमने की ताकत रखेगा। यहाँ तक तो हमने उस प्रकार का लोकोत्तर चमत्कार दिखलाया जो मनुष्य अपने परिश्रम और निरन्तर अभ्यास के द्वारा प्राप्त कर सकता है। अब बहुत सी लोकोत्तर चातुरी और गुण ऐसे भी होते हैं जो जन्म के साथ उपजते हैं और मानसिक अथवा दैहिक शक्ति के बढ़ने के साथ ही साथ वे भी बढ़ते जाते हैं जैसे लोकोत्तर

लावण्य वाक्पटुत्व कवित्त शक्ति या किसी दूसरे प्रकार की प्रतिभा और वे सब मनुष्य में अपूर्व पूर्व पुण्य की साखी भर रहे हैं ।

जिस देश या जाति के लोगों में लोकोत्तर प्रतिभा वालों की संख्या अधिक हो उस पर ईश्वर की अधिक कृपा माननी चाहिये, धन्य है उस भूमि को जो ऐसो के जन्म ग्रहण से पवित्रित स्वर्ग की उपमेय भूत है । धन्य है उस वीरप्रसविनी को जिसने ऐसो को अपने गर्भ में धारण किया है ।

“सपुमानर्थवज्जन्मा यस्य नाग्नि पुरस्थिते ।

नान्यागुलि समभ्येति संख्यायामुद्यताङ्गुलिः ॥”

यह लोकोत्तरता जो निरी ईश्वर-प्रदत्त और उसकी कृपा का परिणाम है किसी की बपीती नहीं धरोहर नहीं कर्मज व्याधि के समान जन्म के साथ उपजती है और मरण के साथ लय हो जाती है । न बाँटने से बँटती है न बलात्कार से हरी जा सकती है । जातपांत या ऊँचनीच भगड़ों से बिल्कुल परे है । बहुधा देखा जाता है बड़े से बड़े घराने वाले इससे वंचित रह मुँह ताका करते हैं । एक नीचतर मनुष्य में ऐसी अद्भुत प्रतिभा पाई गई है कि जिसे देख चित्त चमत्कृत हो उठता है । दुर्गतिग्रस्त भारत से वह लोकोत्तर चमत्कारी विदा होकर भुवनविजयिनी इंगलैंड की भूमि में जा बसी है जहाँ इस समय प्रतिभा, विज्ञान, धन, बल, विद्या, वाणिज्य और हुनर का एक साथ सचट्ट हो रहा है । हम यहाँ तक पामर और गताङ्ग हो गये कि पेट भर अन्न के लिये भी तरसते हैं । बाल्मीकि और व्यास रसातल को चले गये । कालिदास और भवभूति काल की आहुति बने । नवनवति कोटीश्वर पटनागति नन्द मतिमन्द हो इङ्गलैंड के राजा चइल्ड को अपना सर्वस्व सौंप गये । कलहांकुर पिथौरा और जयचन्द ने मेल और साहुत के पुराने पेड़ को बैर और फूट के कुल्हाड़ों से काट-काट जब फेंक दिया तो उसकी कलम यूरोप के सम्राजों ने सींच-सींच बढ़ाना आरंभ किया । सच है:—

“मास्मसीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशं”

अन्त में भारत की वर्तमान दारुण दशा और इङ्गलैंड का नवाभ्युत्थान देख उस की अचिन्त्य शक्ति अदृष्ट को बारम्बार नमस्कार है जिसने यह सब कर दिखाया और न जाने अभी और क्या करे ।

ईदिसम्बर १८९०

३२—सब से भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगतगति

समझदारी का रोग

मूढ़ता, अज्ञानकारी, नादानी, अज्ञान जिस नाम से इसे पुकारो निःसन्देह सकल सुखों का स्रोत है 'तेरो जानिबो गरौ पड़ो' ज्ञातयौवना का यह कथन हम लोगों के लिये बहुत ही सुघटित हो रहा है। आदम पहले सब भात प्रसन्न बाग अदन में रखे गये पर शैतान के बहकाने में आय जब उन्होंने (Tree of knowledge) "ज्ञान के वृक्ष का फल" खा लिया तभी से पापी हो गये सब मुसीबतें उन पर आ पड़ीं और बाग अदन से भी निकाल दिये गये। दूधमुहाँ बालक जब तक अज्ञ है कैसा प्रसन्न रहता है ज्यों ज्यों बड़ा होता है उसकी मुग्ध मुखच्छवि में अन्तर पड़ता जाता है और वह बालक पूरा ज्ञानवान् हो अनेक भ्रमों में पड़ अपनी अज्ञदशा को याद कर पीछे पछताता है। सचमुच यह समझदारी ऐसी महाव्याधि है जिसका इलाज किसी तिब्ब, वैद्यक, डाक्टरों, यूनानी या मिसरानी में हुई नहीं। कदाचित् लुकमान सरीखे कोई नये हकीम या वैद्य पैदा हो इसकी दवा निकालें भी तो इसने ऐसा जड़ पकड़ लिया है कि कसी ही अमृत तुल्य औषध दी जाय कभी दूर होने वाली नहीं है। इस असाध्य रोग के बहुत से निदान या आदि कारण हैं जिनमें से दो चार यहाँ पर हम गिनाये देते हैं। हमारे पढ़ने वाले सचेत रहें और उन कारणों की ओर कभी भूल कर भी न फ़टकें नहीं तो फ़ज़ीहत में पड़ेंगे। बहुदर्शी होने से; बहुत पढ़ने से; खास कर अच्छी तालीम पाय सुशिक्षित होने से; जो इस समझदारी के रोग में ग्रस्त हैं उनका साथ करने से; उनकी बात सुनने से; देश-देशांतर में घूमने से; हर एक मजहबों को टटोलने से; हर किस्म के आदमियों की सोहबत से; सुशिक्षितों के साथ अत्यन्त घिष्ट-पिष्ट होने से इत्यादि इत्यादि।

कितने संक्रामक रोग ऐसे हैं कि संपर्क से बढ़ते हैं पर इस समझदारी असाध्यरोग में यह असर नहीं पाया जाता। नासमझों का संपर्क कर हमने बहुत चाहा कि हम भी उनके समान हो जायँ किन्तु हमारी सब चेष्टा व्यर्थ हुई अथवा हमने कितना ही चाहा कि यह भूत नासमझों पर भी सवार हो जाय पर संक्रामक न होने से समझदारी समूची की समूची हमारे पास लौट आई। अणु मात्र भी उनके साथ न रही अधिक फैलाव इस रोग का अङ्गरेजी तालीम के साथ हुआ और अब तो नित्य नित्य बढ़ता ही जा रहा है। बाहर के लोगों का प्रभुत्व यहाँ निरी हमारी नासमझी से हुआ। थोड़े से लोग जो यहाँ व्यापार के बहाने आए हमें न समझ पाय हम पर अपना अधिकार भरपूर कर बैठे। कुल आबादी के हिसाब से समझदारों की संख्या अभी दाल में नमक भी नहीं है। जो ना समझे हैं वे आनन्द से कुलाचें भर रहे हैं उन्हें कभी सपने में भी यह ध्यान नहीं होता कि “हम क्या थे क्या हो गए और क्यों ऐसा हुआ” इसे कभी सोचते भी नहीं। कोई कोई जिन्हें कभी को इसका ख्याल आता है वे परमेश्वर की इच्छा या कलि की महिमा कह बोध कर लेते हैं और यह तय कर रखता है कि “हम नित्य-नित्य गिरते ही जायँगे” उनकी पैनी बुद्धि की कहाँ तक प्रशंसा की जाय जिनकी नस नस में दास्यभाव भरा है, उनके मन में कभी एक बार भी यह नहीं आता कि जापान, अमेरिका, तथा योरोप के देशों में कलियुग ने अपना प्रभाव क्यों न दिखाया, क्या कलि चाण्डाल को भी भारत ही व्यापने को मिला ?

सितंबर १९०६

